संसार की महान् आत्माएँ

लेखक—

श्रीकृष्ण 'सरल',

एम० ए०; एल० टी०; साहित्य-रत्न

आचार्य, अन्तर्महाविद्यालय डबरा, मध्यप्रदेश.

प्रकाशक—

स्टूडेन्ट बुक डिपो,

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

पाटनकर बाजार, लश्कर (मध्यप्रदेश)

थमावृत्ति } सन् १९५७ ई० { मूल्य, १ रु० ५० नये पैसे

प्रकाशक—
स्टूडेन्ट बुक डिपो
पाटनकर बाजार, लश्कर (मध्यप्रदेश)



मूल्य
एक रुपया पचास नये पैसे



मुद्रक
रा० व० बागले
लोक-कला प्रिंटिंग प्रेस,
गणेश कॉलनी, लश्कर (मध्यप्रदेश)

दो शब्द

एक विद्वान ने लिखा है—

"विद्यार्थी जीवन चरित्र-निर्माण का समय है। इस आयु मे विद्यार्थी जिन गुणों को ग्रहण कर लेते है वे उनके आगे के जीवन में और भी विकसित होकर उन्हें सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहते हैं। अतएव शिक्षा का उद्देश्य भी यही होना चाहिये कि वह विद्यार्थी समाज में उच्च मानवीय गुणों का विकास करे। स्वतंत्र भारत के शिक्षा क्रम में ऐसी पुस्तकों को स्थान दिया जाना चाहिये, जो विद्यार्थियों में प्रारम्भ से ही उच्च आदर्शों के प्रति अनुराग जगा सकें, जो न केवल व्यक्तिगत विकास को प्रेरणा दें बल्कि स्वस्थ सामाजिक भावना और लोक कल्याण की दिशा में भी अग्रसर कर सकें। यह निर्विवाद सत्य है कि ऐसी पुस्तकों में महापुरुषों की जीवनियाँ, आत्म-कथाओं तथा उनकी शिक्षाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।"

कहना न होगा कि उपर्युक्त विद्वत्ता पूर्ण कथन ही इस पुस्तक की प्रेरणा का स्रोत है। प्रस्तुत पुस्तक में संसार के सभी ख्याति प्राप्त महापुरुषों के जीवन और उनके आदर्शों पर प्रकाश डाला गया है। इस बात का पूर्णरूप से ध्यान रखा गया है कि महापुरुषों के विषय में लिखते समय उनके जीवन के उन्ही अंगों का विशद विवेचन किया जाय जिनका संबन्ध विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण से है। संसार के सभी भागों में ऐसे महापुरुष अवतरित होते रहे हैं जिनके जीवन वृत्त और महान कार्य विश्व के सभी विद्यार्थी समाज को अनुकरणीय हो सकते हैं। अतः यदि आज का हमारा विद्यार्थी वर्ग विश्व की इन विभूतियों के पावन संदेश को हृदयंगम कर अपने जीवन को तदनुरूप बनाने का प्रयत्न कर सका तो यह उनके लिये सौभाग्य, देश के लिये गर्व और लेखक के सन्तोष की बात होगी।

श्रीकृष्ण 'सरल'

विषय-सूची



करुणा के अवतार : भगवान बुद्ध

करुणा के अवतार—भगवान् बुद्ध

भारत-भूमि महापुरुषों की भूमि है। इस वीर-प्रसू की कोख से ऐसे-ऐसे पुत्र-रत्नों ने जन्म लिया है जिनकी अपूर्व आभा से न केवल अपने घर का आँगन, वरन् विश्व का कोना-कोना प्रकाशित हुआ है। जब-जब हमारे देश के नभ पर दुर्दिन के बादल मँडराये, पावन पुण्य-भूमि पर दानवता का दमन-चक्र प्रवर्तित हुआ, मानवता त्रस्त और आतंकित हो त्राहि-त्राहि कर उठी, धर्म का अधर्म ने गला दबाया, तब-तब एक ऐसी दैवीय शक्ति अवतरित होती रही है जिसने भय से व्याकुल प्राणियों को, रोती बिलखती मानवता को, अधर्म से उत्पीड़ित धर्म को अपने स्नेह की शीतल छाया में अभय-दान देकर उपकृत किया है। करुणा के अवतार भगवान् बुद्ध भी इन दैवीय विभूतियों में से एक हैं।

भारत की तत्कालीन परिस्थिति:—

जिस समय क्षमा, दया और प्रेम की प्रतिमूर्ति भगवान् बुद्ध इस पुण्य-भूमि में प्रकट हुए, उस समय भारत बौद्धिक संक्रान्ति-काल की विषम परिस्थितियों के बीच से निकल रहा था। राजनैतिक उथल-पुथल शांत हो जाने के पश्चात देश में विचारात्मक आन्दोलन प्रारम्भ हो चुका

था। ब्राह्मणवाद अपने उत्कर्ष को पराकाष्ठा पर पहुँचने के लिये नैतिक-निष्ठा का दुरुह गढ़ स्थापित कर रहा था। वह धार्मिकता का एकाधिकार प्राप्त कर देश की भोली-भाली जनता को जटिल भक्ति की भूलभुलैयों में डालकर मुक्ति-मार्ग की ओर अग्रसर कर रहा था वैदिक काल के सरल साधना-पथ का स्थान अब कर्म-काण्ड की कट्टरता ने ले लिया था। साधारण जनता का सुकोमल मन शान्ति प्राप्ति के लिये किसी सरल मार्ग के अन्वेषण की कामना कर रहा था। मोक्ष-मन्दिर के द्वार उच्चवर्णों के लोगों के लिये ही खुले थे, शूद्र कहे जाने वाले निम्न-वर्णों के लोग उन सीढ़ियों पर चढ़ नहीं सकते थे। देवताओं की तृप्ति और प्रसन्नता के लिये पुजारी वर्ग निरीह पशुओं की बलि-प्रथा का भरपेट प्रचार कर रहा था। ऐसे ही कठिन-कराल समय में भारत की भूमि पर एक महात्मा का जन्म हुआ जिसे माता-पिता के मोह ने गौतम और साधक-संसार ने बुद्ध के नाम से पुकारा।

जन्म और जीवन का प्रभात:—

शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु के राज-प्रासाद में पुत्र-जन्म के समाचार ने हर्ष की हिलोरें प्रसारित कर दी थीं। मातृ गृह की ओर प्रस्थान करते हुए रानी मायादेवी ने यात्रा के मध्य में ही प्रकृति के खुले प्राङ्गण लुम्बिनी वन में एक शाल वृक्ष की शीतल छाँह में पुत्र-रत्न को जन्म दिया था। बालक के स्वनाम धन्य पिता राजा शुद्धोदन को अपनी प्रौढ़ावस्था में यह रत्न वरदान के रूप में मिला था। जाने कितनी आशाओं और उमंगों से उनका हृदय पुलकित हो रहा था। राजभक्त जनता उन पर बधाइयों की वर्षा कर रही थी। महलों के वस्तु-भंडारों के द्वार खुल चुके थे और उनसे दान-सरिता प्रवाहित हो रही थी। मुक्त हाथों से भूखों को भोजन, वस्त्र-हीनों को वस्त्र और निधनों को धन बाँटा जा रहा था। ग्रहों का विधान करते हुए ब्राह्मणों ने बालक का भविष्य घोषित किया—"राजन्! तुम्हारा यह पुत्र यदि

गृहस्थाश्रम में ही रहा तो चक्रवर्ती सम्राट् होकर अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालन कर धन-धान्य की वर्षा करेगा, यदि गृह-त्याग कर इसने सन्यास ग्रहण किया तो यह परम सिद्ध महात्मा बनकर ब्रह्म का साक्षात्कार कर शोक-संतप्त संसार के लिये मोक्ष के मार्ग का अन्वेषण करेगा।"

पुत्र-जन्म के सातवें दिन ही माता मायादेवी अपनी सहधर्मिणी राजा शुद्धोदन की दूसरी रानी महाप्रजावती की गोद में अपनी आशाओं के केन्द्र सिद्धार्थ को डाल कर परलोक गामिनी हुई। महाप्रजावती के मातृत्व और सहज-स्नेह ने कुमार के बाल्य-जीवन मे किसी अभाव का अनुभव नहीं होने दिया। पिता के प्रेम और परिचर्या ने उन्हें सुख के सभी साधन एकत्र कर दिये। कुमारोचित शिक्षा-दीक्षा, अस्त्र-संचालन, आखेट का अभ्यास आदि सभी प्रबन्ध सुलभ कर दिये गये। राजवंशानुगत कलाओं में प्रवीणता प्राप्त कर इस चिन्तनशील कुमार ने तरुणाई के सुखद प्रांगण में प्रवेश किया।

राजा शुद्धोदन तो चाहते ही थे कि कुमार को कभी एकान्तवास और चिन्तन का अवसर न दिया जाय जिससे उनके हृदय में विरक्ति के बीज अंकुरित हो सकें, अतः उन्होंने एक उत्तम अवसर प्राप्त होते ही गौतम का विवाह कोलिय वंश की रूपवती राजकुमारी यशोधरा के साथ करा दिया। कहते हैं कि राजकुमारी के रूप और गुणों की प्रशंसा से प्रभावित होकर कई राजकुमार उससे विवाह करने के इच्छुक थे। कुमारी के पिता ने अपनी कन्या के लिये सुयोग्य वर की प्राप्ति की आशा से स्वयंवर का आयोजन किया। अनेकों राजकुमार अपने भाग्य की परीक्षा के लिये स्वयंवर में सम्मिलित हुए। राजकुमारों को दौड़ने-भागने, अस्त्र-शस्त्र-संचालन, घुड़ सवारी, लक्ष्य-भेद आदि सभी की परीक्षा देनी पड़ी और इन सब में सर्वोच्च निपुणता दिखाई

कुमार गौतम ने । अनिंद्य सुन्दरी राजकुमारी यशोधरा ने जयमाल डालकर पति के रूप में उनका वरण किया। अपने जीवन के अट्ठाइसवें वर्ष में दाम्पत्य-जीवन के पुण्य-तरु से गौतम को पुत्र-फल की प्राप्ति हुई। नाम रखा गया राहुल।

महाभिनिष्क्रमण:—

विलासिता का वातावरण, रूप और यौवन की शृंखलाएं, आत्मीयता के बन्धन, और राजकीय ऐश्वर्य इस मननशील युवक को गृहस्थाश्रम में बाँध कर न रख सके। उसके संवेदनशील हृदय पर मानव जीवन की विभीषिकाएँ, जरा-मरण के चित्र और आधि-व्याधियों के उत्पीड़न, अमिट चिन्ह अंकित कर चुके थे। जीवन की संगुरता और विश्व की नश्वरता ने उसके हृदय में जो विरक्ति के बीज बो दिये थे वे अब अंकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित होने को आतुर थे। उसका कर्तव्य उसे पुकार-पुकार कर कह रहा था कि इस निस्सार संसार के मृग-जल से तेरी आध्यात्मिक तृषा शान्त न हो सकेगी, इसका परित्याग कर आगे बढ़ और ऐसे मार्ग को खोज निकाल जिस पर चल कर विश्व के दुःखी और पीड़ित प्राणी आवागमन के चक्र से मुक्त हो आत्मिक शान्ति-लाभ प्राप्त कर सकें। वस्तुतः एक निस्तब्ध रात्रि के मध्य-प्रहर में गौतम उठे और अपनी पत्नी यशोधरा और प्रिय पुत्र राहुल को सुख-स्वप्नों में निमग्न सोते छोड़ राजमहलों से बाहर हो गये। वे अपने साथ अपने सारथी चंडक और प्रिय घोड़े कंतक को लेते गये जिनकी सहायता से राजधानी से बहुत दूर निकल कर एक सघन वन में प्रवेश किया।

प्रातः काल होने पर गौतम ने अपने इन दोनों साथियों को विदा किया। अपनी तलवार की सहायता से अपने घने, घुंघराले, काले केश काट डाले और काषाय वस्त्र धारण कर आगे बढ़े। चंडक के लौटने

पर गौतम के गृह त्याग का समाचार जब कपिलवस्तु निवासियों ने सुना तो वे सन्न रह गये। यशोधरा के मन का अवसाद अजस्र धाराओं के रूप में आँखों से बह निकला। शुद्धोदन का हृदय पुत्र-वियोग के आघात से विदीर्ण हो गया।

परिभ्रमण और साधना के प्रयोग:—

गौतम आगे बढ़ते ही गये। शाक्यों के प्रदेश का परिभ्रमण कर वे मल्लों के प्रदेश में पहुंच गये। राजगृह के नरेश बिम्बिसार ने गृह-त्यागी गौतम को रोकने का पूर्ण प्रयास किया। उनके अनुनय-विनय प्रेम पूर्वक आग्रह से गौतम न रुके। रुकते भी कैसे, मन का संकल्प प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिये प्रेरित कर रहा था। बिना मोक्ष का मार्ग ढूँढ़े उनके मन को कैसे चैन मिलता। सत्य की खोज में वे घूमते ही रहे। ब्राह्मणों की सहायता से वेद-पाठ और सद्ग्रन्थों का अध्ययन किया पर उनके मन को शान्ति न मिली। उन्होंने कठोर साधना का पथ अपनाया। नेरंजरा नदी के किनारे उरुवेल नामक स्थान पर घोर तपस्या प्रारम्भ की। ग्रीष्म के भीषण ताप, पावस के प्रभंजन और तड़ित्-गर्जन और शीत के समीर-तीरों को चुनौती देते हुए जीवन के छः लम्बे-लम्बे वर्ष उन्होंने कठिन तपस्या में व्यतीत कर दिये। शरीर सूख कर काँटा हो गया, हड्डियाँ उभर आईं, आँखें भीतर धस गईं, फिर भी हृदय को शान्ति न मिल सकी, सत्य की खोज पूर्ण न हो सकी। गौतम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि व्यर्थ अनेक प्रकार के कष्ट दे-देकर शरीर को सुखा डालने से आत्मा को शान्ति नहीं मिल सकती, मुक्ति का मार्ग कोई दूसरा ही है। अतः उन्होंने तपस्या छोड़ दी और फिर आगे बढ़े।

बुद्धत्व की प्राप्ति:—

घूमते घूमते गौतम गयाजी की ओर पहुँचे। यहाँ वैशाखी पूर्णिमा

के दिन जब वे एक विशाल वट वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे आत्म-चिन्तन कर रहे थे तब एकायक उन्हें हृदय में एक दिव्य प्रकाश का आभास हुआ। उन्हें ज्ञान का वह स्रोत मिल गया जिसकी खोज में वे वन-वन भटकते फिरे, नदी-नाले पार किये और गिरि गह्वरों की धूल छानी। इस वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे उन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ। उनका हृदय आनन्द से भर गया, ज्ञान प्राप्ति की प्रतिभा से मुख-मण्डल प्रदीप्त हो उठा। जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर उन्हें ज्ञान का बोध हुआ वह बोधि-वृक्ष कहलाने लगा। गौतम से वे अब गौतमबुद्ध हो गये।

ज्ञान का प्रसार:—

ज्ञान की जिस खोज में गौतम निकले थे वह उन्हें मिल गया। अब उसके प्रसार का कार्य उनके सामने था। वे नहीं चाहते थे कि वे अकेले ही इस सुख का उपभोग करें। उनका तो यह उद्देश्य था कि विश्व का प्रत्येक प्राणी दुर्दान्त यातनाओं से छुटकारा प्राप्त कर आत्मिक आनन्द का अनुभव करे। विश्व की कल्याण-कामना में उनका हृदय हिल्लोलित हो रहा था। अतः लोगों को मुक्ति-मार्ग दिखाने के लिये वे चले और घूम-घूमकर अपनी शिक्षाओं का प्रचार करने लगे। सब से पहले उन्होंने अपने उन पाँच साथियों को इस ज्ञान की प्रव्रज्या दी जो बुद्धगया में विचारों का मतभेद हो जाने के कारण इन्हें छोड़कर चले गये थे। बुद्ध ने जो उपदेश उन्हें दिया वह 'मध्यमा प्रतिपदा' (मध्यम-मार्ग) कहलाता है। यह 'आर्य-अष्टांगिक मार्ग' के नाम से भी पुकारा जाता है। ये आठ अंग हैं—

(१) सम्यक् विचार

(२) सम्यक् संकल्प

(३) सम्यक् वाणी

(४) सम्यक कर्म
(५) सम्यक् आजीविका
(६) सम्यक् व्यायाम
(७) सम्यक् स्मृति, और
(८) सम्यक् समाधि।

गौतम बुद्ध ने लोगों को बताया कि संसार दुःखों का सागर इसलिये बना हुआ है कि जन्म और मृत्यु के माध्यम से इसमें बार-बार आना और जाना पड़ता है। इसको ही आवागमन का चक्र कहते हैं। मनुष्य की मुक्ति तभी हो सकती है जब वह इस आवागमन के चक्र से छुटकारा प्राप्त कर मोक्ष अथवा निर्वाण पद प्राप्त कर उसी ज्योति में समा जाय जिसका वह एक अंश है 'मज्झिम मार्ग' अथवा 'मध्यम मार्ग' का अनुसरण करके ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। मन को शुद्ध और हृदय को शान्त रखने के लिये उन्होंने दस आज्ञाओं का विधान किया जो इस प्रकार हैं—

(१) किसी की हत्या न करना,
(२) चोरी न करना,
(३) दुराचार न करना,
(४) झूठ न बोलना,
(५) दूसरों की निन्दा न करना,
(६) दूसरों के दोष न निकालना,
(७) अपवित्र भाषण न करना,
(८) लालच न करना,
(९) घृणा न करना, और
(१०) अज्ञान से बचना।

बुद्ध ने जो भी उपदेश दिया वह उनकी सतत-साधना और अनुभव की कसौटी पर खरा उतर चुका था। उनका कहना था कि आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ ही दुःखों की उत्पत्ति होती है। हमारी एक आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर दूसरी सामने आ जाती है और यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। एक वस्तु की प्राप्ति पर दूसरी वस्तु की इच्छा जाग्रत हो जाती है और मन को कभी संतोष नहीं मिलता। इच्छाओं की निवृत्ति और संतोष में ही सच्चा सुख है।

गौतम बुद्ध अन्धविश्वास एवं रूढ़िवाद के विरोधी थे। उनका यह कथन कितना महत्वपूर्ण एवं तर्क-संगत है—

'किसी बात में केवल इसलिये विश्वास मत करो कि बहुत से लोग उसे मानते हैं। इसलिये विश्वास मत करो कि वह तुम्हारे आचार्यों की कही हुई बात है। इसलिये विश्वास मत करो कि वह तुम्हारे धर्म-ग्रन्थों में लिखी हुई है। बल्कि प्रत्येक बात को अपने व्यक्तिगत अनुभव की कसौटी पर जाँचो, यदि तुम्हें वह अपने तथा औरों के लिये हितकर जान पड़े तो मान लो, न जान पड़े तो मत मानो।"

प्राणि मात्र के प्रति दया-भावना रखना बुद्ध की शिक्षाओं का महत्व पूर्ण अंग है। उनका उपदेश था कि संसार के सभी जीवधारियों में एकसी आत्मा का निवास है। बाह्य कलेवर अर्थात् देह के आकार-प्रकार और रूप-रंग में भेद हो सकता है पर एक जीव और दूसरे जीव की आत्मा के स्वरूप में कोई भेद नहीं होता। अतः प्राणी मात्र के प्रति दया का दृष्टि कोण रखना और कष्ट न पहुंचाना हमारा संकल्प होना चाहिये।

मानव-धर्म की व्याख्या करते हुए महात्मा बुद्ध ने बताया कि वर्णाश्रमादि व्यवस्थाएँ मनुष्य की बनाई हुई हैं और इसलिये उन्हें सर्व मान्य नहीं कहा जा सकता। एक मनुष्य का कोई अधिकार नहीं कि वह दूसरे मनुष्य को अपने से हेय और निम्न-कोटि का समझे। पठन-पाठन, पूजन-अर्चन और देव-दर्शन आदि से किसी वर्ण-विशेष को वंचित रखना मानव-धर्म के नियमों के प्रतिकूल है। न्यायोचित तो यह है कि जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिये जिन परिस्थितियों की आवश्यकता पड़ती है वे सबके लिये सुलभ हों। साधना और आराधना का मार्ग सब के लिये खुला रहे। भक्ति-भावना पर किसी का एकाधिकार न हो। मन, वचन और कर्म की सचाई सबसे बड़ा कर्त्तव्य और जीव मात्र पर दया सबसे बड़ा धर्म होना चाहिये।

बुद्ध की शिक्षाओं का प्रभाव:—

तत्कालीन समाज पर बुद्ध की शिक्षाओं का त्वरित प्रभाव दृष्टि-गोचर होने लगा। बीहड़ वन में भूले-भटके पथिक को जैसे किसी ने पथ पर ला खड़ा किया हो, मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए प्राणी को जैसे संजीवनी प्रदान कर दी हो—वैसा ही प्रभाव हुआ बुद्ध की वाणी का व्यथा से व्याकुल जन-समुदाय पर। साधकों के सुकोमल मन को भक्ति का सरल मार्ग मिल जाने से अपूर्व आनन्द की उपलब्धि हुई, उनमें उत्साह का संचार हुआ, जीवन के प्रति आकर्षण और जगत के प्रति आस्था बढ़ी। बुद्ध की पीयूष-वर्षिणी वाणी ने शोक-संतप्त समुदाय को कल्याण, पतितों को उत्थान, जीवन को सम्मान और निरीह बलि-पशुओं को अभय-दान दिया।

बुद्ध के व्यक्तित्व का जादू ही कुछ ऐसा था कि जो कोई उनके सामने जाता प्रभावित होकर ही रहता था। ज्ञान-गरिमा के प्रकाश से प्रदीप्त सुन्दर मुख-मंडल पर सौम्यता की छाप; तप के प्रभाव से अर्जित

सुगठित बलिष्ठ देह; विश्व-कल्याण की कामना से भरपूर भावुक हृदय, शान्ति-दायिनी, शीतल सकरुण दृष्टि और स्नेह की सरसता से स्नात अमृतोपम वाणी, सब मिल-जुलकर दर्शक के मन पर ऐसा अमिट प्रभाव डालते थे कि वह इस दैवीय विभूति का सदा के लिये भक्त बन जाता था।

इस प्रकार शान्ति और मुक्ति का सन्देश देते हुए महात्मा बुद्ध देश के अनेक भागों में परिभ्रमण करते रहे। उनके शिष्य-समुदाय की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। दिग-दिगन्त में उनकी कीर्ति और प्रतिभा का प्रकाश विकीर्ण होने लगा। आबाल-वृद्ध नर-नारी उनके उपदेशामृत का पान कर कृत-कृत्य होने लगे। राजा और रंक सभी उनसे धर्म की प्रव्रज्या लेने लगे। घूमते-घूमते वे अपनी पुरातन क्रीड़ा-भूमि कपिलवस्तु पहुंचे। नगर के नर-नारियों ने उनका अभूत-पूर्व स्वागत किया। राजा शुद्धोदन का हृदय हर्ष और गर्व से भर गया। मानिनी यशोधरा का मन अपने सौभाग्य सूर्य को सामने देख कमल-कली सा खिल उठा। राहुल का मस्तक इस परम-सिद्ध महात्मा के रूप में अपने पिता को प्राप्त कर श्रद्धा से झुक गया। सबने मिल जुलकर उनके उपदेशामृत का पान कर धर्म की दीक्षा ली।

भगवान् बुद्ध ने जिस अमृत-कलश को कठोर साधना के उपरान्त, मन-मानस का मन्थन करके प्राप्त किया था, उसे सहज ही लोक-कल्याणार्थ बाँट दिया। उनका संकल्प पूरा हो चुका था। जीवन की अन्तिम यात्रा अपनी समाप्ति पर थी। साथियों को संबोधित कर उन्होंने अंतिम उपदेश दिया—

"भिक्षुओ, संभव है मेरे पश्चात् तुम समझने लगो कि अब हमारा उपदेशक कोई नहीं, हमारा मार्ग-दर्शक कोई नहीं। ऐसा कभी मत समझना। जिन-जिन धर्मों का मैंने उपदेश किया है, उन्हीं को तुम अपना शास्ता (उपदेशक) और मार्ग-दर्शक समझना।"

यह हैं तथागत के अन्तिम शब्द जिनकी झंकार आज भी धर्म-प्राण जनता को शान्ति का अमर-सन्देश दे रही है। उसकी पावन-स्मृति में विश्व के करोड़ों कण्ठों से आज भी एक ही ध्वनि निकलती है—

"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।"

मानवता के महान् उपासक

महात्मा गान्धी

विश्व-वंद्य महात्मा गांधी संसार के उन इने-गिने महापुरुषों में से हैं जिनके पावन नाम के स्मरण मात्र से आत्मा पुलकित एवं मानवता गर्वित होती है। ऐसे महापुरुष देश और काल की सीमाओं को पार कर सार्वदेशिक और सार्वकालिक कहलाकर अपने पुनीत आदर्शों से युग-युगान्तर तक मानवता की सच्ची सेवा करते रहते हैं।

जीवन–परिचय:—

२ अक्टोबर १८६९ को पोरवन्दर में एक गुजराती दम्पति—कर्मचन्द्र तथा पुतलीबाई के घर एक बालक का जन्म हुआ और नाम रखा गया मोहनदास। बालक के संस्कार वैश्य प्रथानुकूल ही सम्पन्न कराये गये। मोहनदास ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पोरबन्दर और राजकोट में ग्रहण की और तेरह वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह एक प्रतिष्ठित गुजराती परिवार की कन्या कस्तूरीबाई के साथ हो गया जो आगे चलकर कस्तूरबा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। १६ वर्ष की अवस्था में ही इनके पिता का स्वर्गवास हो गया तथा उसी वर्ष इन्होंने

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर उच्च शिक्षा के लिये वे इंग्लैंड गये जहां बैरिस्टरी पास करके १८९१ में स्वदेश लौटे और अपनी माता के निधन का दुःखद समाचार सुना। स्वदेश लौटने पर बम्बई में रहकर वकालत प्रारम्भ की और १८९३ में अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी के एक मुकदमे की पैरवी करने के लिये दक्षिणी अफ्रीका को प्रस्थान किया। दक्षिणी अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के प्रति गोरी जाति का दुर्व्यवहार देखकर नवयुवक बैरिस्टर का हृदय पसीज उठा और वहाँ रहकर शान्ति-पूर्ण ढंग से, स्वयं पीड़ा और यातनाओं को सहन करते हुए अपने देशवासियों के दुःखों को दूर किया। १९१५ में भारत लौटने पर स्वतंत्रता-संग्राम का श्रीगणेश किया। अब यह जन-नायक भारतवर्ष का हृदय सम्राट् और तपस्वी महात्मा बन चुका था। १९२० के असहयोग आन्दोलन, १९३० की डंडी-यात्रा तथा १९४२ की जन-क्रान्ति की अनेक सीढ़ियों को पार करते हुये १५ अगस्त १९४७ में इस महात्मा ने भारतवर्ष को उसकी अभीप्सित मंजिल स्वतंत्रता तक पहुँचाया। और तब १९४८ में ३० जनवरी की संध्या को इस कर्मयोगी ने अपने इरादे से पागल एक युवक के हाथ गोली का शिकार होकर, इस पार्थिव शरीर को सदा के लिये छोड़ अमर-पद प्राप्त किया।

महानता के बीजांकुर:—

कहते हैं कि पूत के लक्षण पालने में दिखाई पड़ने लगते हैं। गाँधी जी के साथ भी यह कहावत चरितार्थ हुई। बाल्यावस्था से ही आप में कुछ ऐसे गुणों का प्रादुर्भाव हुआ जो किसी व्यक्ति को महा-पुरुष बनाने के लिये पर्याप्त होते हैं। बचपन में आप अपने माता-पिता के परम आज्ञाकारी पुत्र रहे हैं। विशेष रूप से आपकी माता की शिक्षाओं का तो आपके जीवन पर अमिट प्रभाव रहा है।

सत्संग और कुसंग दोनों ही अपना-अपना प्रभाव मानव-जीवन

पर डालते हैं। अपने विद्यार्थी-जीवन में गाँधी जी ने अपने कुछ मित्रों के प्रभाव में आकर मांसाहार तथा धूम्रपान का प्रयोग किया था। मांस-भक्षण तो उन्होंने इस विश्वास के साथ किया था कि इसके सेवन से मनुष्य बलवान् बनता है और बिना बलवान् बने कोई भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर सकता। इस दुष्प्रवृत्ति के पीछे भी एक महान उद्देश्य छिपा था। परन्तु उनकी आत्मा ने उन्हें प्रकाश दिखाया और अपने इन कुकृत्यों पर उन्हें हार्दिक पश्चात्ताप हुआ। उनके हृदय को तब तक शान्ति नहीं मिली जब तक उन्होंने एक पत्र द्वारा अपना अपराध अपने पिता के समक्ष प्रकट नहीं कर दिया। सच्चे हृदय से अपराध को स्वीकार करना और उसके प्रति पश्चात्ताप होना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित होता है। इस घटना का प्रभाव यह हुआ कि गाँधी जी का जीवन कलंक-पंक से बाहर निकलकर अनिंद्य कमल के समान खिल उठा।

सत्य का पालन ही गाँधी जी के जीवन-पथ का सबसे प्रिय पाथेय रहा है और इसका प्रादुर्भाव भी उनके जीवन के प्रभात में हो चुका था। अपने बचपन में आपने एक नाट्य-समिति द्वारा खेला गया 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक देखा और तबसे बराबर आपके मन में यही धुन सवार रही कि मैं भी हरिश्चन्द्र के समान सत्य-व्रती बनूँ। हुआ भी ऐसा ही। आपने मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन किया और बड़ी से बड़ी विपत्ति आने पर भी इस व्रत को न छोड़ा।

सचाई और ईमानदारी प्रारम्भ से ही गांधी जी के जीवन के आदर्श रहे हैं। आपके विद्यार्थी-काल की एक घटना प्रसिद्ध है कि एक समय आपके विद्यालय में निरीक्षण करने के लिए इंस्पेक्टर साहब आये। उन्होंने अंग्रेजी के कुछ शब्द लिखने को दिये जिनमें से एक शब्द आपने अशुद्ध लिखा। कक्षाध्यापक ने कई बार संकेत किया कि अपने पास के विद्यार्थी की अभ्यास-पुस्तक में से देखकर अशुद्ध शब्द

को शुरू कर दो पर आपने ऐसा नहीं किया। सत्याचरण का यह संकल्प बचपन में प्रारम्भ हुआ और जीवन पर्यन्त आपने इसका निर्वाह किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी का बाल्य-काल जीवन का प्रायोगिक काल था। प्रायोगिक इस अर्थ में कि जिन प्रवृत्तियों को आपने कटु, असहनीय, और अमाननीय पाया उन्हें छोड़ते गये और केवल उन्हीं गुणों को ग्रहण किया जो संपूर्ण जीवन में सच्चे मोती के समान चमकते रहे।

जीवन-संग्राम और गांधीजी:—

कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्य किसी निर्दिष्ट स्थान के लिये चलना प्रारम्भ करता है पर पहुँच कहीं अन्यत्र जाता है। गांधी जी की शिक्षा-दीक्षा इसी उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जीवन के क्षेत्र में वे एक कुशल व्यक्ति के समान उतरें। विलायत जाकर बैरिस्टरी पास करने का मंतव्य यही था कि वे एक प्रसिद्ध वकील बनकर धन और यश कमाएं। पर ईश्वर ने उनके लिये कुछ और ही सोच रखा था। विलायत से कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त कर जब आप भारत लौटे तो बम्बई में रहकर आपने वकालत प्रारम्भ की। वकालत चली तो खूब पर इस कार्य में आपका मन नहीं लगा। आप केवल सच्चे मामलों को ही अपने हाथ में लेते थे चाहे उसमें आपको हानि ही क्यों न उठानी पड़े। इस कठिन व्यवसाय में भी आपने अपने उस सत्य-व्रत को न छोड़ा जिसका संकल्प अपने बचपन में ही आपने ले लिया था।

जिन दिनों गांधी जी वकालत कर रहे थे, बम्बई की अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी के एक मामले की पैरवी करने के लिये आपको दक्षिणी अफ्रीका जाने का अवसर मिला। वहाँ आपने गोरे लोगों द्वारा काले रंग के

प्रवासी भारतीयों के प्रति जो दुर्व्यवहार देखा उससे तो आपकी आत्मा रो उठी। हाय रे संसार! रूप और रंग का इतना मूल्य और मानवता जैसे कोई वस्तु ही नहीं। प्रभु-सत्ता के मद में उन्मत्त मानव इतना नीच हो सकेगा इसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उनका हृदय विद्रोह कर उठा और कर उठा वह भीषण संकल्प जिसके फल स्वरूप करोड़ों भारतीयों को ही नहीं वरन् पीड़ित और दलित मानवता को मुक्ति का वरदान मिला। जीवन संग्राम में प्रवृत्त यह सद्गृहस्थ अपना सर्वस्व बलिदान कर एक लंगोटी लगाये खड़ा था। गांधी के रूप में भारत ने एक महान् जन-नायक और विश्व ने एक तपोपूत महात्मा के दर्शन किये।

भारत को गांधी जी की देनः—

भारत वर्ष गांधी जी के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। वे अपने जीवन पर्यन्त तन-मन धन से देश और देश वासियों की सेवा करते रहे। भारतवर्ष को उन्होंने असंगठित, निर्धन, पराधीन, रूढ़िवाद से जर्जर और निर्बल राष्ट्र के रूप में पाया था। इतने पिछड़े हुए देश की काया-कल्प करना कोई साधारण कार्य नहीं था। फिर भी इस दृढ़-व्रती ने जिस कार्य का बीड़ा उठाया उसे पूरा करके ही छोड़ा। उनकी पैनी दृष्टि से भारत का कोई भी अभाव छिपा नहीं रहा, जिसे पूरा नहीं किया गया हो। इस कुशल कारीगर के हाथ निर्माण की प्रत्येक दिशा की ओर बढ़े और उन्होंने वह चमत्कार दिखाया कि देखने वाले दंग रह गये। भारतवर्ष को इतनी पतनावस्था से उठाकर एक महान् राष्ट्र बनाने में उन्होंने किस दूरदर्शिता से काम लिया इसका पता उनके कार्य-कलापों के संक्षिप्त विश्लेपण से चल सकेगा।

साम्प्रदायिक असंगठन ने हमारे देश की जड़ों को खोखला कर दिया था। भिन्न-भिन्न जातियों और धर्मों के भेद-भाव ने देश की

एकता को भीषण आघात पहुँचाया था। गांधी जी ने देखा कि जब तक साम्प्रदायिक एकता स्थापित नहीं की जायगी तब तक देशोत्थान का कोई कार्य सम्भव नहीं होगा। अतः उन्होंने सभी जातियों और धर्मों के लोगों का विश्वास प्राप्त किया और उन्हें बताया की सभी धर्म और जातियों के मूल सिद्धान्त एक ही हैं, यदि भेद है तो केवल अपने-अपने दृष्टि-कोण का। एक ईश्वर को कोई किसी नाम से और कोई किसी नाम से पुकारता है। मानवता संसार के लोगों का सबसे बड़ा धर्म है जिसके पालन में दूसरे धर्म बाधक नहीं बनते। इन उपदेशों का प्रभाव यह हुआ कि गांधी जी के अनुयायियों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों के लोग थे। उन्होंने केवल उपदेशों से ही नहीं, अपने आचरण द्वारा भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यदि वे गीता का पाठ करते थे तो कुरान शरीफ की आयतें भी उन्हें याद थीं। यदि उनके आश्रम में रामनाम का संकीर्तन होता था तो शुक्रवार की नमाज भी पढ़ी जाती थी। उनके लिये 'ईश्वर-अल्लाह' एक ही नाम थे। यही कारण था कि सबने धर्म और जाति गत भेदभावों को भूल कर राष्ट्रोत्थान के पुनीत कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया और असंभव कार्य संभव होगया।

साम्प्रदायिक अव्यवस्था के समान ही एक अन्य समाज-विरोधी तत्व अस्पृश्यता ने देश की एकता को छिन्न-भिन्न कर रखा था। हिन्दू समाज वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त पर आधारित था और कुछ वर्ण अपने आप को श्रेष्ठ और इतर वर्णों को हेय और निम्न कोटि का समझते थे। भंगी या चमार आदि कहे जाने वाले वर्ण के लोगों को कोई छूना भी पसन्द नहीं करता था। और छू जाने पर स्नानादि क्रियाओं का विधान था वे देव-दर्शन के लिये मन्दिरों में नहीं जा

सकते थे, विद्याध्ययन नहीं कर सकते थे। वेद पाठ की उन्हें आज्ञा नहीं थी और अन्य धार्मिक कृत्यों और सामाजिक उत्सवों से उन्हें वंचित रखा जाता था। अन्य धर्मावलम्बियों ने हिन्दू समाज की इस निर्बलता से लाभ उठाकर अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों को अपने धर्म में दीक्षित कर उनसे अपने समाज को बलवान बनाया। परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष की सामाजिक एकता की नींव खसकने सी लगी और राष्ट्रीयता का विशाल भवन लड़खड़ा कर धराशायी होने की राह देखने लगा। ऐसे ही कठिन समय में गांधी जी ने आकर उसे सहारा दिया और उसे खड़ा रहने की शक्ति प्रदान कर दूसरों को शरण देने के योग्य बनाया। उन्होंने लोगों को समझाया कि वर्णाश्रम आदि भेद मनुष्य के बनाए हुए हैं और मनुष्य ईश्वर का बना हुआ। ईश्वर ने अपनी सृष्टि में किसी को ऊंच और किसी को नीच नहीं बनाया। सभी के शरीर में एक सी आत्मा का निवास है। गांधी जी अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक समझते थे। उनके शब्दों में ही उनके विचारों को देखिये:—

'अस्पृश्यता यानी छुआछूत, यह चीज जहाँ तहाँ धर्म के नाम या बहाने से विघ्न डालती है और धर्म को कलुषित करती है। यदि आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है तो अछूत कोई नहीं। जैसे भंगी, चमार अछूत माने जाते हैं, पर अछूत नहीं हैं, वैसे मुर्दा भी अस्पृश्य नहीं है, वह आदर और करुणा का पात्र है। मुर्दे को छूने, तेल मलने अथवा हजामत बनवाने के बाद हमारा नहाना सिर्फ स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित है। मुर्दे को छूकर या तेल लगाकर न नहाने वाले को गंदा भले ही कहिये, पर वह पातकी नहीं है। यों तो बच्चों का मैला उठाने पर माता जब तक न नहाए या हाथ पैर न धोये तब तक भले ही अस्पृश्य हो पर बच्चा खेलते-खेलते उसे छू ले तो वह अछूत नहीं हो जाता, न उसकी आत्मा मलिन होती है। पर भंगी चमार आदि नाम ही तिरस्कार सूचक

हो गये हैं और वह जन्म से ही अछूत माना जाता है । उसने चाहे मनो साबुन बरसों तक शरीर पर घिसा हो चाहे वैष्णवों का सा वेश रखता हो, माला कंठी धारण करता हो, चाहे वह नित्य गीतापाठ करता हो और लेखक का पेशा करता हो, फिर भी है अछूत । इसे धर्म मानना या ऐसा बर्ताव होना धर्म नहीं है, यह अधर्म है और छोड़ने योग्य है । अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अंग नहीं है । इतना ही नहीं बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है, और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है ।"

स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में गाँधी जी ने जो कार्य किया वह भारत के लिये वरदान सिद्ध हुआ । उन्होंने अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों में हरि के दर्शन किये और हृदय से उनकी सेवा की । वे हरिजनों के बीच में रहते और उठते-बैठते थे और उनके कल्याण की चिन्ता उन्हें सदैव लगी रहती थी । उन्होंने 'हरिजन-सेवक-संघ' की स्थापना की, उनके लिये चन्दे एकत्र किये और अपने विचारों के प्रचार के लिये 'हरिजन' नाम का समाचार-पत्र भी निकाला । परिणाम यह हुआ कि समाज का उपेक्षित समझा जाने वाला यह अंग गाँधी जी के स्नेह और सहानुभूति को प्राप्त कर इस योग्य बन गया कि उसके सामायिक सहयोग से स्वतंत्रता का संग्राम सरलता से जीता जा सका ।

गाँधी जी ने अनुभव किया कि भारत का कल्याण तब तक संभव नहीं जब तक उसके गाँवों का और गाँवों में बसने वाली जनता का कल्याण नहीं होता । देश की जनसंख्या का अधिकांश भाग जबतक भूख से पीड़ित और अशिक्षित रहेगा । तबतक स्वतंत्रता का स्वप्न अधूरा ही रहेगा । गाँवों में फैली हुई भीषण निर्धनता और घोर अविद्या के अंधकार का नाश होने पर ही सौभाग्य के सूर्य का उदय होगा । अतः उन्होंने ग्रामोद्धार का नारा बुलन्द किया । उन्होंने नवयुवकों को प्रेरित किया कि वे गाँवों में जा-जाकर बसें, ग्राम-वासियों के जीवन-स्तर को

सुधारने के लिये स्वास्थ्य और सफाई के महत्व को समझायें, उनके बीच रहकर, उनसे घुल-मिलकर वे सभी कार्य करें जो उनके उत्थान में सहायक हों। उनका कहना था कि केवल समझाने या उपदेश देने से ही काम नहीं चल सकता। आवश्यक है कि स्वयं भी कर्त्तव्य के क्षेत्र में उतरा जाय। ग्रामोद्धार के लिये ग्रामोद्योगों के विकास को वे बहुत ही आवश्यक समझते थे। जीवन के लिये भोजन और वस्त्र की नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है। गाँवों में अन्न तो उत्पन्न किया जाता है पर वस्त्रोद्योग की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। गांधी जी ने खादी-उत्पादन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने बताया कि अपने ही खेतों में उत्पन्न किये गये कपास को अवकाश के समय कात-बुन कर हम अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये पर्याप्त कपड़ा बना सकते हैं। इससे हमें आत्मिक सुख भी मिलेगा और अपना पैसा अपने ही बीच रहेगा। खादी के प्रचार ने लोगों के दृष्टिकोण को बदला। खादी ने केवल उनके तन को ही नहीं ढका वरन् उनकी आत्मा को उन्नत किया और उनमें स्वदेशी भावना का प्रचार कर दासता का अन्त किया।

आदर्श गाँव की कल्पना करते हुए गांधी जी चाहते थे कि वहाँ के घरों अथवा झोंपड़ों में प्रकाश और वायु का संचार हो, प्रत्येक घर के आस-पास सब्जियाँ उत्पन्न करने के लिये पर्याप्त भूमि हो, गोशाला हो, गाँव के रास्ते साफ रहें, प्रार्थना के लिये सार्वजनिक मन्दिर हों, शिक्षा के विकास के लिये बुनियादी पाठशालाएँ हों, चिकित्सालय और डाकखाने हों तथा आपसी झगड़ों का निबटारा करने के लिये ग्राम-पंचायतें हों।

गांधी जी की दृष्टि समाज के सभी पिछड़े हुए वर्गों की ओर गई और उनके उत्थान के लिये उन्होंने प्रत्येक संभव प्रयत्न किया। उस

समय मजदूरों की भी बड़ी चिन्तनीय अवस्था थी। उनके सामने भी भोजन और वस्त्र की समस्या विकराल रूप धारण किये खड़ी थी। सामाजिक कुरीतियों और मद्य-पान की दुष्प्रवृत्ति ने इस वर्ग को निकम्मा बना रखा था। गांधी जी ने उनकी सुख-सुविधा के लिये सरकार का ध्यान आकर्षित किया। उनकी दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिये उन्होंने आवश्यक समझा कि धार्मिक और सामाजिक उत्सवों के अवसर पर ऐसे स्वस्थ मनोरंजन के साधनों का प्रचार किया जाय जिससे उन्हें मद्य-पान आदि का अवसर ही न मिल सके।

इसी प्रकार स्त्रियों की दशा सुधारने के लिये भी गांधी जी ने भर सक प्रयत्न किया। वे उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्यों के समान ही अधिकार दिलाने के पक्ष में थे। वे नारी को शक्ति और श्रद्धा का रूप समझते थे और उनका विश्वास था बिना इस वर्ग की उन्नति किये मनुष्य की पूर्णता अधूरी है। समानाधिकार के लिये स्त्रियों का शिक्षित होना आवश्यक है और उन्हें अपने कर्तव्यानुकूल ही शिक्षा मिलना चाहिये। नारी-उत्थान के लिये वे आवश्यक समझते थे कि उनमें प्रचलित पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल-विवाह आदि प्रथाओं का अन्त होना चाहिये।

विद्यार्थी-वर्ग के प्रति भी गांधी जी के हृदय में अत्यन्त उदात्त भावनाओं का समावेश था। वे विद्यार्थियों को राष्ट्र की सम्पत्ति और भावी नागरिक के रूप में मानते थे। उनकी उन्नति के लिये जो कार्य-क्रम उन्होंने निर्धारित किया था वह इस प्रकार है:—

(१) विद्यार्थियों को दल बन्दी की राजनीति में शामिल न होना चाहिये। वे विद्यार्थी हैं, शोधक हैं, राजनीतिक आन्दोलनकारी नहीं।

(२) उन्हें सदा खादी बर्तने वाला होना चाहिये। विदेशी तथा देशी

मिलों में बनी वस्तुओं का त्याग करके देहात की बनी वस्तुओं को ही प्रयोग में लाना चाहिये।

तिरंगे राष्ट्रीय झंडे का संदेश अपने जीवन में बरतें और अपने हृदय में साम्प्रदायिकता की भावना या छूआ-छूत में से किसी एक को भी न घुसने दें। उन्हें अन्य धर्मी विद्यार्थियों और हरिजनों से, ऐसी सच्ची दोस्ती जोड़नी चाहिये जैसी किसी अपने सगे के साथ जोड़ी जाती है।

उन्हें चाहिये कि अपने किसी पड़ौसी के चोट लगजाने पर उसकी तात्कालिक मदद करें और पड़ौसी गाँव में कृषि का काम और रास्ते की सफाई करें। इतना ही नहीं गाँव के बालकों और प्रौढ़ों को शिक्षा दें।

वे जो कुछ नया सीखें उस सारे का अनुवाद मातृ-भाषा में करें और आसपास के गांवों में हर हफ्ते घूमने जांय तब वहां के लोगों को वह पढ़ कर समझायें।

उन्हें चाहिये कि कोई भी गुप्त काम न करें। अपना सारा व्यवहार सरे आम खुले खजाने करें। शुद्ध संयमी जीवन व्यतीत करें, अपने कमजोर सहपाठियों का रक्षण करने को सदा तैयार रहें, और जिन्दगी को खतरे में डालकर भी अहिंसक आचरण द्वारा दंगे शान्त कराने को तैयार रहें।

साथ पढ़ने वाले विद्यार्थियों के प्रति उनका बर्ताव अति सरल सभ्यतापूर्ण होना चाहिये।

विद्यार्थियों के लिये राष्ट्र-पिता का यह सन्देश आज भी उतना ही गुणकारी है और रहेगा, जितना कि पहले कभी था। वे जितना ही

इसका पालन करेंगे उतना ही उनका वर्तमान और भविष्य उज्ज्वल होगा।

भारत राष्ट्र को गांधीजी की सबसे बड़ी देन है उसकी राजनैतिक स्वतन्त्रता। सैकड़ों वर्षों की दासता के अभिशप्त जीवन में भारत ने नैतिकता भी खो दी थी और वह निराशा के गहन अंधकार में निश्चेष्ट पड़ा था। उसे न तो अपने बाल-विक्रम पर ही भरोसा रह गया था और न आशा की कोई किरण कहीं से दिखलाई पड़ती थी ऐसे ही समय में गांधी ने भारत का नेतृत्व किया। उनकी वाणी में वह जादू, व्यक्तित्व में वह ओज और कार्य-प्रणाली में वह आकर्षण था कि देश के करोड़ों नवयुवक उनके एक इंगित पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तत्पर हो गये। गांधी जी ने उन्हें बताया कि देश का उद्धार हिंसा और रक्तपात के मार्ग से नहीं, अहिंसा और प्रेम के मार्ग से संभव है। हुआ भी वही जो उस त्रिकाल-द्रष्टा ने सोच कर रखा था। अनेकों विघ्न-बाधाओं और संकट पूर्ण परिस्थितियों में से निकल कर भारत ने उनके सफल संचालन में शान्ति पूर्ण उपायों द्वारा अपनी चिर-अभिलषित स्वाधीनता को प्राप्त किया। ब्रिटिश-साम्राज्य का जुआ भारत के कंधे से उतर गया। स्वतंत्रता के मंगल-प्रभात में उन्मुक्त पवन के स्पर्श से हमारा राष्ट्रीय तिरंगा ध्वज लाल किले पर लहराने लगा। यह है उस महान् यती की सतत साधना का परिणाम जिसकी मुट्ठी भर हड्डियों ने वज्र-शक्ति को भी मात कर दिया।

गाँधीवाद या गांधीनीति ?

आज गांधीजी के नाम को लेकर अनेक विभ्रम प्रचलित हो गये हैं। उनके दृष्टि-कोण, उनकी विचार-धारा को लोग गांधीवाद के नाम से पुकारने लगे हैं। वास्तव में गांधी जी के मन में किसी वाद विशेष की कल्पना नहीं थी। उन्होंने लोगों को नवीन-चेतना, नवीन विचार शक्ति

और जीवन का नया दृष्टिकोण दिया पर कभी उन्होंने नये मत-मतान्तर अथवा संप्रदाय के प्रचलन का विचार नहीं किया। उनके शब्दों में ही उनके विचारों की बानगी देखिये—"········ मुझे सम्प्रदाय स्थापित करने की कोई इच्छा नहीं है। सच पूछिये तो मेरी महत्वाकांक्षा इतनी विशाल है कि कुछ अनुयायियों का कोई सम्प्रदाय स्थापित करने से तृप्ति नहीं हो सकती। मैंने किसी नये सत्य का आविष्कार नहीं किया है, बल्कि सत्य को जैसा मैं जानता हूँ उसी के अनुसार चलने का और लोगों को बताने का प्रयत्न करता हूँ। हाँ प्राचीन सत्य सिद्धान्त पर नया प्रकाश डालने का दावा मैं जरूर करता हूँ।"

यह है गांधी जी के सत्य का सिद्धान्त जिसका पालन उन्होंने जीवन पर्यन्त मन, वचन और कर्म से किया। सत्याग्रह के अस्त्र से ही उन्होंने अनीति और अनाचार पर आधारित विशाल साम्राज्य से टक्कर ली और उसका अन्त किया। उनका उपदेश था कि मनुष्य को अपने आचरण और व्यवहार में सत्य का ही प्रयोग करना चाहिये। हमारी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होना चाहिये। हमारे व्यवहार में कोई आडम्बर, कोई कपट और कोई बनावट नहीं होना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि आज के युग में लोगों ने सत्य को भुला दिया है और छल-प्रपंच और धोखे की नीति से काम लेना प्रारम्भ कर दिया है पर इसका यह अर्थ नहीं कि असत्य ही सफलता की कुंजी है। क्षण भर के लिये भले ही असत्य लोगों को अपनी ओर आकर्षित करले पर सत्य के उदित होते ही उसकी कलई खुले बिना नहीं रहती। इसलिये हमें चाहिये कि कष्ट-कण्टकों की चिन्ता न करते हुए, असत्य की क्षणिक चकाचौंध से प्रभावित न होते हुए, सत्य का पल्ला पकड़े रहें और सहज ही में संसार के पार हो जायें। सत्य ही हमारा साध्य और सत्य ही हमारा साधन हो।

सत्य के ही समान सुदृढ़, गांधी-नीति का दूसरा पहिया है अहिंसा।

सत्य अहिंसा का अस्त्र लेकर गांधी जी ने जो संग्राम किया उसे दुनियाँ युगों तक याद रखेगी। भीषणता के इस युग में जब कि नर-संहार के भयानक से भयानक आयुधों के अविष्कार हो रहे हैं, गांधी जी का नया आयुध उन सबको मात कर देता है। विश्व ने यह देख लिया है कि आज के युग में जबकि मनुष्य, मनुष्य के खून का प्यासा बन बैठा है, एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को हड़पने को तैयार है, शान्ति युद्ध के मार्ग से नहीं, अहिंसा के मार्ग से ही संभव है।

गांधी जी की अहिंसा किसी का वध न करने के अर्थ तक ही सीमित नहीं वरन् वह पवन और प्रकाश की भाँति व्यापक और सुखदायी है। हिंसा केवल कर्म से ही नहीं, मन और वचन से भी हो सकती है। दूसरे के प्रति कुविचार उत्पन्न होना, किसी को हानि पहुँचाने का विचार मन में लाना, ऐसे वचनों का प्रयोग करना जिन्हें सुनकर किसी के हृदय पर आघात हो, आदि सब हिंसा के ही रूप हैं उन सब से बचना सची अहिंसा है। अहिंसा की व्याख्या करते हुए एक समय उन्होंने कहा था—

'जैसे हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है, उसी तरह अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है। हिंसा में भय से मुक्ति नहीं मिलती किन्तु भय से बचने का इलाज ढूंढने का प्रयत्न रहता है। अहिंसा में भय को स्थान नहीं है। भय-मुक्त होने के लिये अहिंसा के उपासक को उच्च-कोटि की त्याग वृत्ति विकसित करनी चाहिए। जमीन जाय, धन जाय, शरीर भी जाय इसकी परवा ही न करें। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसीलिए अहिंसा का पुजारी एक ईश्वर का ही भय रखे और दूसरे सब भयों को जीतले।"

गांधी जी की इस अहिंसा नीति ने जो चमत्कार दिखाये हैं

बड़े-बड़े महात्मा भी न दिखा सके। अहिंसा और प्रेम के अस्त्र लेकर ही वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुर्दमनीय दानव से जा भिड़े, इसी मंत्र के बल से उन्होंने बड़े-बड़े विषधरों को वश में कर लिया और इसी अमोघ-आवरण के सहारे वे नोआखाली के धधकते हुए अग्नि-कुण्ड से अछूते निकल आए। इसी अहिंसा का प्रताप है कि एक धक्के की प्रतीक्षा में पतन की कगार पर बैठा हुआ पागल संसार अपनी मुक्ति के लिए अहिंसा के उपासक भारत की ओर करुण दृष्टि से निहार रहा है। यह गांधी जी की देन नहीं तो और किसकी है।

सत्य और अहिंसा के साथ-साथ गाँधी-नीति में हम उनके संयम और सदाचार-पालन, एकादश व्रत; सर्व धर्म भाव और सर्वोदय की भावना को ले सकते हैं। इसी नीति के आधार पर उन्होंने स्वराज्य और सुराज दोनों को कार्यान्वित कर दिखाया। गाँधीजी की यह नीति किसी 'वाद' या सम्प्रदाय से अधिक चिरस्थायी और अद्वय रहेगी।

गाँधीजी और हम:—

अब हमें देखना यह है हम किस प्रकार गांधीजी द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलते हैं, किस प्रकार हम उनके प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। हम उनकी जयंती मनाते हैं, उनके चित्र पर पुष्प मालाएँ चढ़ाते हैं, उनकी जय के नारे लगाते हैं और बात-बात पर उनके नाम की दुहाई देते हैं। क्या यह सब गांधी आदर्श के प्रचार के लिये पर्याप्त है। हम सच्चे अर्थों में उनके उपकार का बदला तभी चुका सकते हैं जब उनके विचारों के अनुसार सोचें, उनके कार्यों के अनुसार स्वयं भी कार्य करें। जिन कार्यों को उन्होंने प्रारम्भ किया वे पूर्ण होने के लिये हमारे संकल्प और साधना का सहयोग चाहते हैं। आवश्यक है कि हम अपने व्यवहार और कार्य-क्षेत्र में सत्य और अहिंसा का पालन करें घृणा और ईर्ष्या के बदले अपने हृदय का स्नेह दो दूसरों को बाँटें, अछूत कहे जाने वाले अपने भाइयों को अपने गले

से लगाना सीखें; देश की निर्धनता को दूर करने के लिये खादी को अपनाना सीखें; समाज कल्याण के लिये शरीरश्रम और रचनात्मक कार्यक्रम को अपने जीवन का अंग बनाएँ, और अनीति और पक्षपात के स्थान पर संयम, सदाचार और सात्विकता के आभूषणों से अपने जीवन को अलंकृत करें, तभी हम गांधी-विचारधारा के समर्थक होने का दावा कर सकते हैं।

विश्व-शान्ति के साधक:—

पं० जवाहरलाल नेहरू

आपके मन में इस प्रकार के कई प्रश्नों ने चक्कर काटे होंगे कि संसार का सबसे अधिक धनवान् व्यक्ति कौन है, सबसे अधिक विद्वान् व्यक्ति कौन है, सबसे अधिक बलवान् व्यक्ति कौन है, सबसे अधिक वयो-वृद्ध व्यक्ति कौन है, सबसे अधिक लम्बा और सबसे अधिक नाटा व्यक्ति कौन है, पर कदाचित् ही आप के मन में कभी यह प्रश्न उठा हो, कि 'वर्तमान युग में संसार का सबसे अधिक प्रतिष्ठावान् व्यक्ति कौन है ?' क्यों कि यह प्रश्न अब आपके सामने आगया है इसलिए आप इसका उत्तर जानने के लिये भी उत्सुक होंगे। इसका उत्तर किसी भारतवासी के शब्दों में नहीं, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के लोकप्रिय दैनिक पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के शब्दों में सुनिये जो भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू की अमेरिका यात्रा के समय उसके संपादकीय वक्तव्य में लिखे गये थे। न्यूयार्क टाइम्स ने लिखा:—

"यदि किसी की लोकप्रियता उसके अपने देश के निवासियों के स्वेच्छा प्रेरित सहयोग से आँकी जा सकती है तो अमेरिकन जनता प्रथम बार विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यक्ति के दर्शन करेगी।"

उसी समय राष्ट्रपति ट्रूमैन ने आगे बढ़कर पं० जवाहरलाल नेहरू का स्वागत करते हुए कहा:—



ता के महान उपासक :
महात्मा गांधी



विश्व-शान्ति के
पं० जवाहरल



जीवन का कलाकार
कनफ्यूशियस

"भारत के प्रधान मंत्री महोदय ! संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की जनता और सरकार की ओर से यहाँ स्वागत करते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। न केवल भारत सरकार के प्रमुख के रूप में वरन् स्वतंत्र लोगों के एक महान् देश के प्रतिष्ठित नेता के रूप में भी मैं आपका अभिनन्दन करता हूँ।"

स्पष्ट है कि पं० जवाहरलाल नेहरू आज भारत की दृष्टि में ही नहीं, विश्व के प्रत्येक राष्ट्र की दृष्टि में विश्व के सर्वाधिक व्यक्तिगत सम्मान प्राप्त महापुरुष हैं। नेहरू के इस सम्मान ने न केवल स्वयं उनको गौरवान्वित किया है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा महापुरुषों के जन्मदाता के रूप में प्रस्थापित करदी है। पं० नेहरू को यह सम्मान उनके चारित्रिक गुणों एवं व्यक्तित्व की विशेषताओं के कारण ही प्राप्त हुआ है जिनका संक्षिप्त विवरण इन पृष्ठों में देने का प्रयास किया गया है।

अध्ययनशील प्रवृत्ति:—

पं० जवाहर नेहरू को बचपन से ही पुस्तकें पढ़ने का चाव था। इसका कारण यह था कि दस वर्ष की अवस्था तक वे अपने घर में इकलौते पुत्र थे। और कोई साथी न होने के कारण अपनी रुचि की पुस्तकें पढ़कर ही वे मन लगाया करते थे। पुस्तकों की कमी नहीं थी। उनके पिता पं० मोतीलाल नेहरू के पास एक समृद्धिशाली पुस्तकालय था। पुस्तकों के अतिरिक्त उन्हें समाचार पत्र पढ़ने का चाव भी छोटी अवस्था से ही उत्पन्न हो गया था। पंडित नेहरू के एक गृह-शिक्षक थे श्री एफ० टी० ब्रुक्स। उन्हीं के सम्पर्क में इन्हें पुस्तकें पढ़ने का चाव लगा। बाल-साहित्य, कथा-साहित्य, और काव्य-साहित्य, सभी प्रकार की पुस्तकें उन्होंने बचपन में ही पढ़ डाली थीं। विदेशी लेखकों में से लुई केरोल, किप्लिंग, स्कॉट, डिकेन्स, थैकरे, एच० जी० वेल्स और शालीं

होम्स आदि की कृतियों का अच्छा अध्ययन आपने प्रारम्भ में ही कर लिया था।

पढ़ने के चाव को श्री नेहरू ने आगे भी बनाये रखा। बारह वर्ष की अवस्था में जब वे इंग्लैण्ड के हैरो विद्यालय में प्रविष्ट हुए तो वहाँ भी अपनी अध्ययन शीलता के कारण कई बार उन्हें पुरस्कार मिले। वे अपनी उम्र के बालकों से बहुत अधिक बातें जानते थे। विद्यार्थी काल के उपरान्त भी उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति को चालू रखा। राजनीति शास्त्र का उन्हें विशेष अध्ययन है। इस विषय पर उनका अधिकार क्यों न हो जबकि वे स्वयं ही संसार के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ माने जाते हैं। आज भी वे अपने व्यस्त जीवन में से जब कि उन्हें प्रत्येक दिन अठारह घन्टे काम करना पड़ता है, कुछ समय लिखने पढ़ने के लिये निकाल लेते हैं।

लेखन-अभिरुचि:—

साहित्य के क्षेत्र में भी पंडित जी को सम्माननीय स्थान प्राप्त है। हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार है। दोनों ही भाषाओं में आपने उत्तम ग्रन्थों की रचना की है। अधिकांश साहित्य का निर्माण आपने अपने जेल जीवन में ही किया है। समय का कितना अच्छा सदुपयोग है। 'हिन्दुस्तान की कहानी' 'मेरी कहानी,' 'आजादी के बाद का हिन्दुस्तान', 'विश्व-इतिहास की झलक', 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' आदि आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। आपकी लेखन-शैली अत्यन्त परिमार्जित, सुबोध और प्रभावशाली है।

कुशल राजनीतिज्ञ:—

यद्यपि श्री नेहरू ने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश उस समय किया जब वे विलायत से उच्च शिक्षा प्राप्त कर भारत लौटे, परन्तु

राजनीति के विषयों से उन्हें बचपन से ही प्रेम था। देश-विदेश के समाचार जानने की उत्कण्ठा उन्हें प्रारम्भ से ही थी और इसके लिये वे समाचार पत्र पढ़ा करते थे। बोअर युद्ध की घटनाओं को आप बड़े चाव से पढ़ा करते थे "मेरी कहानी" में आपने एक स्थान पर लिखा है:—

"जिस दूसरी मार्के की घटना ने मेरे जीवन पर उस समय असर डाला, वह थी रूस-जापान की लड़ाई। जापानियों की विजय से मेरा दिल उत्साह से उछलने लगता और रोज मैं अखबारों में ताजी खबरें पढ़ने को उतावला रहता।"

जिस समय श्री नेहरू हैरो विद्यालय में पढ रहे थे उन दिनों की एक घटना का उल्लेख करते हुए आपने लिखा है:—

"इंग्लैंड के आम चुनाव में मुझे बहुत दिलचस्पी थी। जहाँ तक मुझे याद है, यह चुनाव १९०५ के अखीर में हुआ और उसमें लिबरलों की बड़ी भारी जीत हुई थी। १९०६ के शुरू में हमारे दर्जे के मास्टर ने हम से सरकार की बाबत कई सवाल पूछे और मुझे यह देख कर बड़ा अचरज हुआ कि उस दर्जे में मैं ही एक ऐसा लड़का था जो उस विषय पर बहुतसी बातें बता सका—यहाँ तक कि कैम्पबेल बेनरमैन के मंत्रि मंडल के सदस्यों की करीब-करीब पूरी फेहरिस्त मैंने बता दी।"

राजनीति-शास्त्र के इस ज्ञान ने पं० नेहरू को स्वयं भी एक कुशल राजनीतिज्ञ बना दिया। भारत की राजनीति में भाग लेकर उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया। एक समय तो भारत की राजनीति के विषय में ही अपने पिता से इनका मतभेद हो गया पर अन्त में इनके पिता जी को ही इनकी बात माननी पड़ी।

गांधी जी के सम्पर्क में आने से श्री नेहरू की राजनीतिज्ञता में चार चाँद लग गये। उनके निर्देशन में भारत का राजनैतिक चक्र आपने बड़ी कुशलता से घुमाया है। सारथी 'मोहन' के सफल संचालन में ही इस 'पार्थ' ने आज़ादी का महाभारत जीता है।

वैदेशिक मामलों में भी श्री नेहरू का अध्ययन बहुत विस्तृत और ज्ञान बहुत गहन है। भारत का वैदेशिक विभाग सदा आपके हाथ में ही रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में ब्रिटिश साम्राज्य समाप्त हो गया पर फिर भी भारत की ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल का सदस्य बने रहने से जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुआ है, यह पं० नेहरू की ही दूर-दर्शिता और राजनीतिज्ञता का परिणाम है। कोरिया के युद्ध-बन्दियों की समस्या का सफल निराकरण आपकी नीति-कुशलता का उदाहरण है। कोलम्बो राष्ट्रों के सम्मेलन का आयोजन, बांडुंग-सम्मेलन में 'पंचशील' की घोषणा और जेनेवा कान्फ्रेंस आदि की पृष्ठ-भूमि में श्री नेहरू का ही व्यक्तित्व दृष्टि गोचर होता है।

प्रभावशाली वक्ता:—

पं० जवाहरलाल नेहरू में भाषण देने की अद्‌भुत क्षमता है। यद्यपि इस कला में आप प्रारम्भ से ही पारंगत नहीं थे, फिर भी राज-नैतिक जीवन में प्रवेश करने के साथ ही आपने इसका द्रुत विकास किया है। आपके भाषण में लोगों के मन को केन्द्रित रखने की असाधारण क्षमता है। लाखों की संख्या में लोग आपका भाषण सुनने एकत्र होते हैं। आपका भाषण ओजस्वी, विद्वत्ता पूर्ण, तर्क संगत और प्रभावशाली होता है।

१२ अक्टूबर १९४७ को श्री नेहरू ने जो सार-गर्भित और वृहत् भाषण संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा और सीनेट के समक्ष दिया वह अब अमेरिका का ऐतिहासिक भाषण माना जाता है। अमेरिका के

इतिहास में वह दिन एक स्मरणीय दिन रहेगा क्योंकि इसके पूर्व अमेरिका के सदन समक्ष किसी भी विदेशी को बोलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

महान् देश-भक्त:—

श्री नेहरू की देश भक्ति उनके तप और त्याग की अमर कहानी है। एक समृद्धि-शाली परिवार में इकलौते पुत्र को किस लाड़ और प्यार की कमी रह सकती है ? ऐसी स्थिति में अधिकांश बच्चे बिगड़ जाते हैं, पर श्री नेहरू इसके अपवाद हैं। बिगड़ने के स्थान पर उनमें उच्च भावनाओं का विकास हुआ और इन सब में प्रबल था स्वदेशानुराग। जब वे अपने पिताके मुख से भारतीयों के प्रति अँग्रेजों के अत्याचारों की कहानियाँ सुनते तो उनका खून खौल उठता था। अपने बचपन के दिनों की कहानी उन्होंने अपने शब्दों में इस प्रकार लिखी है:—

"मेरा दिल राष्ट्रीय भावों से भरा रहता था। मैं यूरुप के पंजे से एशिया और हिंदुस्तान को आजाद करने के भावों में डूबा रहता। मैं बहादुरी के बड़े-बड़े मंसूबे बाँधा करता था कि कैसे हाथ में तलवार लेकर मैं हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिये लड़ूंगा।'

श्री नेहरू के स्थान पर यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो इतनी अतुल सम्पत्ति और ऐश्वर्य का अधिकारी होकर, अपना सर्वस्व त्याग न कर बैठता; देश की निर्धन जनता और किसान-मजदूरों की मुक्ति के लिये गाँव-गाँव पैदल घूमता न फिरता, जेलों में अपने जीवन को न सड़ाता, डंडे और घूसों की मार न खाता, अपने पारिवारिक सुख को तिलांजलि न देता, वरन् घर बैठकर चैन की वंशी बजाता और मुँह ढक कर सोता। पर श्री नेहरू ने कुछ और ही किया। देश भक्ति में पागल

इस व्यक्ति ने अपने सभी सुखों से मुंह मोड़कर कितनी यातनाओं को सहन किया है, यह किसी से छिपा नहीं है। कहना न होगा कि पं० जवाहरलाल नेहरू जैसा देशभक्त भारत तो क्या संसार के किसी भाग में चिराग लेकर ढूंढ़ने से भी न मिलेगा।

लोक-प्रिय नेता:—

पं० जवाहरलाल की लोकप्रियता वर्णन करने की वस्तु नहीं, गर्व करने की वस्तु है। क्या बच्चे, क्या जवान और क्या वृद्ध, सभी के हृदय में पं० नेहरू के लिये आदरणीय स्थान है। देश के किसी कोने में वे पहुँच जाँय, लाखों की संख्या में श्रद्धालु दर्शनार्थी उनके पास पहुँच ही जाते हैं। उनके मुख से दो बोल सुनने के लिये भूख और प्यास को दबाये हुए लोग घंटों प्रतीक्षा करते रहते हैं। उनकी एक पुकार पर करोड़ों का कोष एकत्र हो जाता है।

भारत ही क्या विदेशों में भी पं० नेहरू को लोक प्रियता और सम्मान प्राप्त है। जब उन्होंने अमेरिका का दौरा किया तो वहाँ की परम्पराएं टूट गईं। वहाँ की लोक-सभा और सीनेट के समक्ष उनका वृहत् भाषण, ऐतिहासिक भाषण हो जाने के साथ-साथ एक विदेशी के लिये सम्मान की पराकाष्ठा का उदाहरण भी है। रूस का लौह-आवरण पंडित नेहरू के लिये खुल गया। वहाँ के बच्चों, बूढ़ों और युवक युवतियों ने उनका जो स्वागत किया वह आत्मीयता की स्थायी कड़ी का रूप बन गया है। रूस में पंडित नेहरू के प्रति प्रेम भावना और लोक-प्रियता के दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। एक सोवियत कलाकार ने उन्हें तार देकर लिखा:—

"आज मेरे यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ है। मैं उसका नाम जवाहरलाल रखने की आज्ञा चाहता हूँ। मैं आपके स्वास्थ्य की मंगल-कामना करता हूँ।"

इसी प्रकार के एक दूसरे तार के शब्द हैं:—आपके प्रति और भारतीय जनता के प्रति अपना हार्दिक भाव प्रगट करने के लिये मैं अपनी नवजात पुत्री का नाम इन्द्रा रख रहा हूँ।"

जिस समय पं० नेहरू ने चीन-यात्रा को प्रस्थान किया उस समय वे भारत की परम्पराओं को तोड़कर गये और वहाँ जाकर उन्होंने चीन की परम्पराएँ तोड़ीं। चीन जाते समय पं० नेहरू को विदाई देने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद स्वयं हवाई अड्डे पर पहुँचे। यह पहिला अवसर था कि किसी राष्ट्रपति ने प्रधान-मंत्री को इतना सम्मान दिया हो। चीन पहुंचने पर उनका स्वागत इतनी धूम धाम और शान के साथ हुआ कि सारे संसार में किसी विदेशी को इतना शानदार स्वागत कभी न मिला होगा। पं० नेहरू को दिये गये भोज में चीन के राष्ट्रपति माओत्से तुंग स्वयं उपस्थित हुए। उनके स्वागत में चीन की परम्पराएँ भी टूट गईं।

अभी हाल ब्रिटेन के दौरे के समय वहाँ की महरानी एलिजावेथ ने पं० नेहरू के सम्मान में जो शानदार भोज दिया, यह ब्रिटेन के इतिहास की एक विचित्र घटना है। इसी प्रकार संसार के अन्य अनेक राष्ट्र पं० नेहरु को उपाधियाँ तथा अपने राष्ट्र की नागरिकता प्रदान कर, केवल उनको ही सम्मानित नहीं, स्वयं को भी गौरवान्वित करते हैं। यह नेहरु की लोक-प्रियता नहीं तो और क्या है ?

सफल शासक:—

पं० नेहरु एक लोकप्रिय नेता ही नहीं सफल शासक भी हैं। एक सफल शासक में जिन गुणों का होना आवश्यक है वे सब आप में विद्यमान हैं। देश की आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियों का ज्ञान व्यक्ति की पहिचान, गहन गंभीरता और न्याय की निष्पक्षता आदि

सभी विशेषताएँ आप में पाई जाती हैं। यही कारण है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को विषम परिस्थियों में से निकाल कर जीवन के सुगम पथ पर लाकर खड़ा कर दिया है। देश के विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों के आदान-प्रदान की समस्या, उन्हें फिर से बसाने का गुरुतर कार्य, देश की बढ़ती हुई खाद्य वस्तुओं की कमी आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिन्हें सुलझाकर पं० नेहरु ने अपनी अद्भुत प्रशासन योग्यता का परिचय दिया है। विश्व यह देखकर चकित है कि भारत ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इतने थोड़े समय में जो प्रगति करली है उतनी कोई भी राष्ट्र इतने समय में नहीं कर सका है। यह सब पं० नेहरु की कार्य-कुशलता का परिणाम है।

पं० नेहरु के मन में भारत को बिलकुल नया देश बनाने की धुन सवार है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं वे देखते ही बनते हैं। श्री नेहरु को भारत एक निर्धन और उजड़े हुए देश के रूप में प्राप्त हुआ था। उन्होंने फिर से उसे चमन बना दिया है। राज्यों का पुनर्गठन नेहरु के ही मस्तिष्क की उपज है जिसके पीछे पिछड़े हुए राज्यों के लोगों के स्तर को ऊँचा करने तथा एक राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने का सदुद्देश्य छिपा हुआ है।

देश के नव-निर्माण का कार्य भी श्री नेहरु के हाथों में है। इसके लिये पंचवर्षीय योजनाएँ चालू की गई हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ में चालू की गई थी और १९५५ तक चली। इस योजना में २३५६ करोड़ रुपये खर्च हुए। इस योजना के द्वारा भारत के कृषि, सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, बिजली, और उद्योग-धंधे आदि सभी क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति की है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है। यह योजना १९६१-६२ में पूरी होगी। इस पर ४८००

करोड़ रु० व्यय किये जायेंगे। इस योजना के पूरे हो जाने पर भारत बहुत कुछ सीमा तक प्रत्येक क्षेत्र में आत्म निर्भर हो जायेगा। यह सब प० नेहरु की शासन-कुशलता का परिणाम है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय विषम परिस्थितियों में इतने बड़े देश का शासन-सूत्र सम्हालने और उसे प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना नेहरु जैसे योग्य प्रशासक का काय है। इसी भावना को इन पंक्तियों के लेखक ने अन्यत्र इस प्रकार व्यक्त किया है:—

"राष्ट्र-भार विशाल कन्धों पर रखे जो आज अपने,
कर दिये संचित हमारे सत्य जिसने मधुर सपने।

× × ×

भाग्य भारत का बंधा है भाग्य के ही साथ जिसके,
खे रहे नौका करोड़ों की सबल दो हाथ जिसके।"

हमें विश्वास है कि श्री नेहरु के सफल संचालन में भारत विश्व की महान् शक्तियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके रहेगा।

शान्ति का अग्रदूत:—

संसार की स्थिति आज एक बारूद के ढेर के समान हो रही है जो क्रान्ति की एक चिनगारी के स्पर्श से भड़क कर भस्मसात् हो जायेगा। इस चिनगारी को रोके हुए है भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू। आपके प्रयत्नों से भारत में ही शान्ति की स्थापना नहीं हुई वरन् अखिल विश्व में उसका प्रसार हो रहा है। गुटबन्दी के इस युग में किसी देश का बिलकुल तटस्थ रहना बड़ा मुश्किल है। आज राष्ट्रों के बीच रस्सा-कशी चल रही है। साधन-सम्पन्न और महान् राष्ट्रों को अन्य राष्ट्र अपनी-अपनी ओर खींचने के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। अमेरिका की हार्दिक इच्छा है कि भारत उसके गुट में सम्मिलित हो

जाय। रूस की कामना है कि वह भारत को अपना साथी बना ले। किन्तु पं० नेहरू की शांति और तटस्थ नीति के कारण ही भारत इस दलबन्दी के दलदल से बाहर है और तृतीय महायुद्ध को रोके हुए है।

विश्व-शान्ति के समर्थक पं० नेहरू ने भी आविष्कारों के इस युग में एक नया आविष्कार किया है। आज जब दुनिया के राष्ट्र विनाश के भीषणतम अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कारों की होड़ में लगे हुए हैं तब पं० नेहरु ने जिस आयुध का आविष्कार किया है उसका नाम है 'पंच-शील' का सिद्धान्त। इस पंचशील के आगे एटम बम और हाइड्रोजन बम फीके पड़ गये हैं। पंचशील के पाँच सिद्धान्त हैं:—

(१) एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और प्रभुता का आदर करना।

(२) एक दूसरे पर कभी आक्रमण न करना।

(३) एक दूसरे के अन्दरुनी मामलों में दखल न देना।

(४) समता और परस्पर हित की नीति अपनाना।

(५) शान्ति के साथ-साथ रहना।

विश्व के अनेक राष्ट्र पंचशील के इन सिद्धान्तों को मानने लगे हैं। उन्हें पूरा भरोसा है कि श्री नेहरु ही ऐसे व्यक्ति हैं जो संसार के आपसी तनाव को कम कर सकते हैं और एक-दूसरे के प्रति मैत्री पूर्ण व्यवहार बनाए रख सकते हैं। भारत के इस सपूत और शान्ति के अग्रदूत की ओर संसार की आँखें आशा भरी दृष्टि से देख रही हैं।

सतत क्रियाशील:—

पं० जवाहरलाल नेहरु कभी निष्क्रिय नहीं बैठ सकते। प्रत्येक समय कुछ न कुछ करते ही रहना उनका स्वभाव बन गया है। दिन

और रात के चौबीस घण्टों में से वे अठारह घण्टे काम करते ही बिताते हैं। रात्रि के दो बजे तक उनकी दिनचर्या का क्रम चलता ही रहता है। इतना अधिक व्यस्त जीवन भारतवर्ष के किसी अन्य व्यक्ति का नहीं है।

इतनी आयु हो जाने पर भी पं० नेहरू के शरीर में अपार फुर्ती है। खिलाड़ी तो वे बचपन से ही रहे हैं। आज भी जब कभी वे दूसरों को खेलते देखते हैं तो उनके मन में मैदान में कूद पड़ने की लालसा जाग्रत हो जाती है। देश की पीड़ित जनता को मुक्ति के लिये कोष एकत्र करने की दृष्टि से आयोजित खेल प्रतियोगिताओं में पं० नेहरू अब भी भाग लेते हैं। इसी प्रकार के एक क्रिकेट मैच में उन्होंने बल्ले के चमत्कार दिखाए थे। अभी कुछ दिन की ही बात है कि उन्होंने चुनौती दी थी मेरी उम्र का कोई व्यक्ति दौड़ में मुझसे आगे नहीं निकल सकता। श्री नेहरू की दिमागी और शारीरिक शक्ति की प्रशंसा करते हुए एक स्वीडिश इंजीनियर ने भारतीय पत्रकारों से कहा था:—"आपके प्रधान मंत्री बड़े तेज चलते हैं, जैसे कोई खिलाड़ी भाग रहा हो और जिस तरह वे सवाल करते हैं, उससे यह मालूम होता है कि उनका दिमाग भी बड़ा तेज भागता है।" अपनी चीन यात्रा के समय श्री नेहरू वहां की एक ऊंची पहाड़ी पर देव-दर्शन को गये। लोगों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि ५०० सीढ़ियों की चढ़ाई वे एक ही साँस में अर्थात् बिना कहीं विश्राम लिए चढ़ गए जब कि कई युवकों का हाँफते हाँफते बुरा हाल हो रहा था।

श्री नेहरु की यह मानसिक और शारीरिक क्रियाशीलता उनकी सफलता की कुंजी है। वह युवकों को भी प्रेरणा प्रदान करती है।

बच्चों के प्रति प्रेम:—

श्री नेहरु को बच्चों के प्रति अपार प्रेम है। बच्चे चाहे देश के हों

चाहे विदेश के, उन्हें बहुत प्यारे लगते हैं। उनका कहना है कि बच्चों का हृदय अत्यन्त भोला और निष्कपट होता है और ऐसा ही हृदय प्यार करने की वस्तु होती है। बच्चे भी आपको बहुत प्यार करते हैं। श्री नेहरू का जन्म दिवस १४ नवम्बर तो बच्चों का अपना त्योहार बन गया है। इसदिन देश के सब बच्चे जो खुशियों का आयोजन करते हैं। उतना वे अपने जन्म दिवस पर भी नहीं करते होंगे। 'चाचा नेहरू जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज उठता है।

विदेशों के बच्चे भी पं० नेहरू को बहुत चाहते हैं। जब कभी श्री नेहरु वहां पहुँचते हैं तो वहाँ के बच्चे पुष्प-मालाओं और गुलदस्तों से उनका हार्दिक स्वागत करते हैं। श्री नेहरू भी अपने देश से उन्हें उत्तम उपहार भेजा करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री नेहरु अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं और चारित्रिक गुणों के कारण भारत ही क्या संसार के लोगों की दृष्टि में आदर्शनायक बने हुए हैं। उनके सुदृढ़ हाथों में भारत की बागडोर सुरक्षित है और उसका भविष्य उज्ज्वल। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि हमारी आशाओं का यह केन्द्र दीर्घजीवी और सुखी हो क्योंकि:—

"साधनाओं का सुमन,
नव-राष्ट्र की आशा यही है।
दीर्घजीवी हो कि सब की
आज अभिलाषा यही है।

आज इसका एक जीवन, देश का जीवन हमारा।
चिर रहे यह एशिया का ध्रुव, हमारा नयन-तारा।
यह हमारे राष्ट्र-जीवन का जवाहर-सा दुलारा।"

श्रीकृष्ण "सरल"

जीवन का कलाकार:—

कनफ्यूशियस

ईसवी पूर्व छटवीं शताब्दी संसार के इतिहास में विशेष महत्त्व रखती है। यह वह समय था जबकि संसार के कई देशों में बौद्धिक आन्दोलन छिड़ा हुआ था, विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ था और सामाजिक परम्पराएं बदल रहीं थीं। लोगों का प्रगतिशील मन रूढ़िवाद के पुरातन चोले को त्याग, एक नये आवरण की खोज में था। धर्म की घिसी-पिटी रूपरेखा उनके मन को शान्ति नहीं दे पा रही थी। इसी शताब्दी में विश्व के विभिन्न भागों में कई महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने अन्याय और अंधविश्वास के विरुद्ध लड़ाई लड़कर, समानता और नवचेतना का संदेश दिया। उन्होंने तत्कालीन रूढ़ि-जर्जर परम्पराओं का उन्मूलन कर जीवन के नवीन आदर्शों का बीजारोपण किया, वर्तमान के प्रति असंतोष प्रकट कर भविष्य के लिये नूतन आलोक दिया।

यूनान में इस समय दो प्रसिद्ध विद्वान्, हिराक्लीतस और माइलेटस प्रकृति पर अनुसंधान कर विश्व-जीवन के नये दृष्टिकोण की खोज में थे। रोम प्रजातंत्र स्थापित करने का आन्दोलन चल रहा था और इसी समय वहाँ पाइथागोरस का जन्म हुआ जो रेखागणित का निर्माता माना जाता है। फिलस्तीन तथा पश्चिमी एशिया में पैगम्बर इसाया लोगों को सन्मार्ग पर चलाने की चेष्टा कर रहा

था। फारस में जरथुष्ट्र ने धर्म-प्रचार का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। भारत में वर्द्धमान महावीर और गौतम बुद्ध वर्ण व्यवस्था, पशु-बलि और ब्राह्मणों के कट्टर कर्म-काण्ड के विरुद्ध ऊँचा स्वर कर, शान्ति, प्रेम और अहिंसा का उपदेश दे रहे थे। चीन में इस समय जो महात्मा समाज कल्याण का संकल्प कर, जीवन को नीति और सदाचार के साँचे में ढालने का प्रयत्न कर रहा था; उसका नाम है कनफ्यूशियस।

जन्म और प्रारम्भिक जीवन:—

कनफ्यूशियस का जन्म लू राज्य के शान्तुंग प्रान्त में ईसा से ५५० वर्ष पूर्व हुआ था। जिस परिवार में यह उत्पन्न हुए थे वह चीन का एक बहुत प्रतिष्ठित परिवार था जिसका सम्बन्ध चीन सम्राट् हुआंग-टी के वंश से था। इनके पिता एक राज्य के किलेदार थे। सत्तर वर्ष की अवस्था तक उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ, पुत्रियाँ कई थीं। पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से उन्होंने इतनी बड़ी अवस्था में अपना दूसरा विवाह किया और फलस्वरूप कनफ्यूशियस का जन्म हुआ। इनका असली नाम कुंग फू-त्जे था। कनफ्यूशियस तो उसका यूनानी भाषानुवाद है।

कनफ्यूशियस जिस समय तीन वर्ष के थे उसी समय उनके पिता का देहान्त हो गया। कुछ दिन तक तो कनफ्यूशियस की माता ने उन का पालन किया। कुछ बड़े होने पर उन्होंने स्वयं ही परिवार का भार सम्हाल लिया। गृहस्थी के भार के बीच दबे हुए वे अपना विद्याध्ययन भी करते गये। उन्होंने चीन के दो प्राचीन ग्रन्थ, यु-चीन और शी-चीन का विशेष रूप से अध्ययन किया जिनका तत्कालीन समाज में बहुत आदर था। उन्नीस वर्ष की अवस्था में कनफ्यूशियस का विवाह हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् उन्हें एक सरकारी नौकरी मिल गई पर उसमें अध्ययन की सुविधा न देख, बाईस वर्ष की अवस्था में उसे छोड़ दिया और एक विद्यालय की स्थापना की।

कनफ्यूशियस का विद्यालय:—

कनफ्यूशियस ने एक विद्यालय की स्थापना कर अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। उनके विद्यालय में धनी और निर्धन का भेद नहीं था और विद्यार्थियों से उनकी शक्ति के अनुसार शुल्क लिया जाता था। उन्होंने चीन के प्राचीन ग्रन्थों के भाष्य लिखे और उनके आधार पर विद्यार्थियों को शिक्षा दी। इतिहास, कविता, शासन के सिद्धान्त तथा औचित्य के नियम ही विशेष रूप से वहाँ पढ़ाये जाते थे। जीवन में सामंजस्य और समरस उत्पन्न करने के लिये उन्होंने नीति और सदाचार की शिक्षा दी। व्यक्तिगत जीवन, पारवारिक जीवन और सामाजिक जीवन किस प्रकार होना चाहिये इसकी उन्होंने विस्तृत व्याख्या की। उनके विद्यालय में शिक्षा वाद-विवाद द्वारा दी जाती थी। विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार तक पहुँच गई थी। कुशल आचार्य और सफल शासक के रूप में उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी।

इतिहास और संगीत का अध्ययन:—

कनफ्यूशियस के विद्यालय में लू राज्य के दो उच्च पदाधिकारी युवकों ने शिक्षा प्राप्त की थी। वे आग्रह और सम्मान पूर्वक उन्हें अपने राज्य की राजधानी ले गये। राजधानी के विशाल पुस्तकालय में कनफ्यूशियस को बहुत से उपयोगी ग्रन्थ मिले। यहाँ रहकर उन्होंने इतिहास का अन्वेषण तथा संगीत कला का शास्त्रीय अध्ययन प्रारम्भ किया। वे संगीत के बड़े प्रेमी थे। उनका कथन था, "मनुष्य का चरित्र कविता से निर्मित होता है, विधियों से विकसित होता है और संगीत से पूर्णता प्राप्त करता है।" संगीत के अभ्यास में वे खाने पीने की सुधि भी भूल जाते थे। जब वे भोजन करते होते तो उस समय भी संगीत सुनना उन्हें बहुत अच्छा लगता था।

जिन दिनों कनफ्यूशियस लू राज्य की राजधानी में थे, उनकी भेंट अपने समय के दूसरे प्रसिद्ध विचारक लाओत्से से हुई। इन दोनों के विचारों में काफी अन्तर था। कनफ्यूशियस इसी जीवन और उसके सुधार की शिक्षा देते थे, तो लाओत्से रहस्यवाद और आदर्शवाद की ओर लोगों को आकर्षित करने का प्रयत्न करते थे। जीवन से परे विषयों का प्रतिपादक लाओत्से, जीवन-दर्शी कनफ्यूशियस के समान लोकप्रिय न हो सका।

कनफ्यूशियस, सफल शासक के रूप में:—

जिस समय कनफ्यूशियस विद्यालय का संचालन कर रहे थे, उनकी प्रशासन योग्यता सिद्ध हो चुकी थी। अपनी योग्यता दिखाने का उन्हें एक अवसर और मिला। उन्हें चुंगतू नामक राज्य का गवर्नर बनाया गया। बड़े ही सुचारु रूप से उन्होंने इस राज्य का शासन किया। उनके शासन-काल में सभी वर्ग के लोग प्रसन्न थे। आय-कर के रूप में जो धन मिलता था, वे उसे व्यापार की उन्नति में ही लगाते थे। उनकी न्याय-प्रणाली बड़ी उत्तम थी। उन्होंने अपराधों का कठोरता पूर्वक दमन किया और अपराधियों को सुधार की ओर प्रवृत्त किया। जो लोग उनके सुधारों का विरोध करते थे, उन्हें भी कठोर दण्ड दिया जाता था। प्रजा की निर्धनता दूर करने के लिये उन्होंने कई उपाय किये। वस्तुओं के मूल्य निर्धारित कर दिये गये। लोगों को काम देने के लिये तथा आवागमन के साधनों में वृद्धि तथा सुधार के लिये सड़कें डालने तथा पुल बनाने की योजनाएं चालू की गईं। उनके शासन काल में मनुष्यों में चरित्र-बल, स्त्रियों में पति-परायणता और विद्यार्थियों में विनय की भावना बढ़ी। राज्य की स्थिति सुदृढ़ हो गई और लोगों में शासन के प्रति विश्वास उत्पन्न होगया।

राज्य परित्याग और परिभ्रमण:—

कनफ्यूशियस के सुचारु शासन प्रबन्ध को देख कर उस राज्य के पड़ोसी राजा को भय हुआ कि कहीं मेरे राज्य की प्रजा भी शासन-सुधार की मांग कर विद्रोह न कर बैठे। उसे अपने राज्य पर आक्रमण की आशंका भी होगई। उसने एक षडयंत्र का सूत्रपात कर यह चाहा कि कनफ्यूशियस के शासन में अव्यवस्था उत्पन्न कर दी जाय जिससे वहाँ का राजा कनफ्यूशियस को निकाल दे और राज्य निर्बल हो जाय। उसने अपने राज्य की अस्सी सुन्दरी नवयुवतियों को चुना जो नृत्य और संगीत में भी निपुण थीं और उन्हें कुछ अच्छे घोड़ों के साथ उपहार स्वरूप अपने पड़ोसी राजा के पास भेज दिया जिसके राज्य में कनफ्यूशियस शासन-सुधार कर रहा था। राज्य के मंत्रिगण इस प्रलोभन में आगये। उन पर रूप और यौवन का जादू चल गया। राज्य-कार्यों की अवहेलना कर वे अपना अधिकांश समय इन सुन्दरियों के नृत्य और संगीत का आनन्द लेने में ही बिताने लगे। परिणाम वही हुआ जो चाहा गया था। राज्य में ऐसी शिथिलता और अव्यवस्था फैली जिसे कनफ्यूशियस भी न सम्हाल सका। जब उन्होंने देखा कि अब उनकी नहीं चलती तो उन्होंने राज्य छोड़कर जाने का निश्चय कर लिया। अपने कुछ साथियों को लेकर वह चल पड़े। उन्हें विश्वास था कि लोग अपनी भूल को समझकर उन्हें लेने आयेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ।

अपनी शिष्य-मण्डली के साथ कनफ्यूशियस ने दूर-दूर तक भ्रमण किया। जहाँ भी वे गये, उन्होंने नीति और सदाचार का ही उपदेश लोगों को दिया। वह एक राज्य से दूसरे राज्य में घूमते रहे। उन्हें आशा थी कि कोई समझदार राजा उन्हें बुलाकर अपने राज्य का शासन सम्हालने की प्रार्थना उनसे करेगा, पर किसी भी राजा ने उन्हें इस

कार्य के लिये निमंत्रित नहीं किया तेरह वर्ष तक इस प्रकार भटकते रहे पर जो कार्य वह चाहते थे वह न मिला। इस परिभ्रमण काल में वह अपनी शिष्य-मंडली को साथ रख जीवन के तत्व उन्हें समझाया करते थे। उनके शिष्य उनके सदुपदेशों को लिख लिया करते थे। यही कारण है कि कनफ्यूशियस के उपदेश-संग्रह, ग्रन्थों के रूप में आगे की शताब्दियों को उपलब्ध हो सके।

पुराने राज्य में फिर लौटे:—

तेरह वर्ष तक दैन्य और निराशा में भटकने के पश्चात् कनफ्यूशियस उसी राज्य में फिर लौट गये जहाँ पहले तीन वर्ष रहकर उन्होंने सु-शासन द्वारा उसे चमका दिया था। वहाँ का पुराना राजा मर चुका था और उसका पुत्र राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ। एक दिन जब उसे अपने एक मंत्री से ज्ञात हुआ कि उसमें जो योग्यता और सु-संस्कार है वे सब कनफ्यूशियस की शिक्षाओं के ही परिणाम हैं तो उसने कनफ्यूशियस को अपने राज्यमें फिरसे बुला लिया। उसके आग्रह पर कनफ्यूशियस वहाँ पहुंच तो गये पर राज्य-शासन न सम्हाल सके। इस समय तक वह जीवन-संग्राम में लड़ते-लड़ते थक चुके थे और उनकी अवस्था भी बहुत हो चुकी थी। अतः शासन भार सम्हालने के स्थान पर वह लोगों को संयम और सदाचार की ही प्रेरणा देते रहे।

जीवन के अन्तिम दिन:—

जीवन के अन्तिम दिनों में कनफ्यूशियस बहुत निराश दिखाई पड़ते थे। उनके मन को यह दुःख था कि अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये उन्हें अच्छा क्षेत्र न मिल सका। कोई ऐसा पारखी न मिला जो उनके मूल्य को समझता। अपने जीवन की निराशा उनके इन शब्दों में प्रकट होती है:—

'एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो पूरी तरह मुझे पहिचान सका हो और कोई ऐसा राजा भी नहीं जो मुझे अपना पथ-प्रदर्शक मानकर अच्छे शासन के राजमार्ग पर चलने के लिये उत्सुक हो।"

जीवन के अन्तिम दिनों में ही कनफ्यूशियस ने 'बसन्त और पतझड़' नाम के एक ग्रंथ की रचना की यद्यपि उनके उपदेश, कई ग्रन्थों में संग्रहीत हैं पर यह उनका अपना मौलिक ग्रन्थ है। जीवन के दोनों दृष्टि-कोण—सुख और दुःख का इसमें विवेचन है।

जीवन के तिहत्तर बसन्त और पतझड़ देखने के उपरान्त ईसा के ४७८ वर्ष पूर्व, इस महात्मा की जीवन-ज्योति विश्वात्मा में लीन हो गई!

कनफ्यूशियस के सिद्धान्त:—

जहाँ गौतमबुद्ध ने आत्मज्ञान के, यूनानी दार्शनिकों ने बाह्य ज्ञान के और यहूदी उपदेशकों ने एकेश्वरवादिता के महत्व का प्रतिपादन किया, वहाँ कनफ्यूशियस ने व्यक्तिगत आचरण की श्रेष्ठता पर बल दिया। उनका विश्वास था कि यदि व्यक्ति सुधर जाय तो समाज अपने आप सुधर जायगा क्योंकि व्यक्ति की इकाइयों से ही समाज बनता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह 'अति' का परित्याग करते हुए 'मध्यम मार्ग' को ही उत्तम समझते थे।

कनफ्यूशियस का प्राचीन शास्त्रों में विश्वास था। उनका कहना था कि प्राचीन ग्रन्थों में निर्देशित आदर्शों का पालन करके ही हम अपने जीवन को आदर्श बना सकते हैं। जिन विद्वानों और महात्माओं ने उन ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उनके संचितज्ञान और अनुभव का लाभ हमें उठाना चाहिये। प्राचीनता की ओर लौटकर ही

हम अपने जीवन को सुखी बना सकते हैं। यही कारण है कि जब कनफ्यूशियस ने विद्यालय की स्थापना की थी तो प्राचीन धर्म ग्रन्थों को ही अपनी शिक्षा का आधार बनाया था।

पारवारिक जीवन को समरस, सुखी और नियमित बनाने के लिये कनफ्यूशियस ने काफी प्रयत्न किया। सुखी पारवारिक जीवन के लिये उन्होंने माता-पिता की सेवा और गुरुजनों को प्रति श्रद्धाभाव का विधान किया। शील और सौजन्य को वह चरित्र का आवश्यक गुण समझते थे। उन्होंने उपदेश दिया कि पत्नी को पति की, पुत्र को पिता की और प्रजा को राजा की आज्ञा माननी चाहिये। परिवार के नियमन को वह इसलिये आवश्यक समझते थे कि इस में परम्पराओं का निर्वाह होता है। उनका कहना था कि राष्ट्र एक बड़ा परिवार और परिवार एक छोटा राष्ट्र होता है। राष्ट्र में जो स्थान राजा का होता है, वही स्थान परिवार में उसके मुखिया का होना चाहिये।

समाज का वर्गीकरण कनफ्यूशियस को मान्य था उस समय चीन का समाज तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त था—राजवंश के लोग, कुलीन वर्ग और श्रमजीवी वर्ग। उनका विश्वास था कि सु-संस्कृत कुलीन वर्ग और आदर्श-राजा ही स्वर्णिम अतीत को लौटा सकते हैं। सामाजिक अनुशासन को वह राष्ट्र में शान्ति स्थापना के लिये आवश्यक समझते थे। प्रत्येक काम को वह समय पर करना ही उचित समझते थे। जिस समय चुंगतू राज्य का शासन उनके हाथ में था, उन्होंने युवा और वृद्ध पुरुषों के लिये पृथक-पृथक प्रकार के भोजन और पृथक-पृथक प्रकार के कार्यों का नियमन किया था।

राजा और राज्य के सम्बन्ध में कनफ्यूशियस का सिद्धान्त था—"यथा राजा तथा प्रजा।" यदि राजा न्यायी, निष्पक्ष और प्रजावत्सल है तो प्रजा का कर्तव्य है कि वह उसके सब कामों में साथ देकर राज्य

भक्त रहे। यदि राजा अन्यायी और दुराचारी है तो प्रजा को अधिकार है कि वह उसको निकाल कर बाहर कर दे। शासन-प्रणाली में कनफ्यूशियस राज्यतंत्र को आदर्श मानते थे।

कनफ्यूशियस जीवन में स्वाभिमान और आत्म-सम्मान के समर्थक थे। जिस समय वह अपनी शिष्य-मंडली के साथ एक राज्य से दूसरे राज्य में भटकते फिर रहे थे उस समय कई राजाओं ने उनसे आग्रह किया कि वह एक स्थान पर रहकर कुछ स्थायी वृत्ति स्वीकार कर लें। इसके उत्तर में उन्होंने यही कहा था:--

"श्रेष्ठ पुरुष सदैव अपने श्रम से उपार्जित द्रव्य ही अपने काम में लेते हैं। इस अवस्था में रूखा-सूखा खाकर पानी पी लेने और हाथ का तकिया बना कर सोने में ही मुझे आनन्द है, किन्तु किसी के आभार में रह कर अथवा अधर्म से रुपया लेकर उसका उपयोग करना मैं नहीं चाहता।"

जीवन की भीषण से भीषण और कठिन परिस्थितियों में भी उन्होंने आत्म-सम्मान नहीं त्यागा और कभी धैर्य नहीं खोया। उनके शिष्य तो उनकी विपत्तियों को देख कर विचलित हो जाते थे पर वह स्थिर और अडिग बने रहते थे। उनके जीवन में ऐसे भी कई समय आये जब खाने के लिये कुछ नहीं होता था। ऐसे ही एक समय उनके एक शिष्य ने उनके दुःख को देख कर प्रश्न किया, "क्या श्रेष्ठ पुरुषों को इसी प्रकार कष्ट सहन करना चाहिये?" उन्होंने अपने स्वभावानुकूल शान्ति से ही उत्तर दिया, "श्रेष्ठ पुरुषों के लिये इससे भी कठिन समय आ सकता है। यह कठिनाइयाँ ही उनकी श्रेष्ठता की कसौटी है। साधारण व्यक्ति इस प्रकार की परिस्थितियों में ही अपना धैर्य खो देता है।"

कनफ्यूशियस, जीवन के सच्चे शिल्पी और कुशल कलाकार थे।

वह आत्मा और परमात्मा के चक्कर में नहीं पड़े। इस जीवन के उपरान्त क्या होता है, जीव कहाँ जाता है, इन प्रश्नों को उन्होंने कभी अपने चिन्तन का विषय नहीं बनाया और न उन्होंने किसी धर्म और 'वाद' का प्रचलन किया। उन्होंने तो अपनी बुद्धि की छैनी और अनुभव के हथौड़े से जीवन के विकारों को काट-छाँट कर उसे ऐसी सुन्दर और सुघड़ मूर्ति का रूप दे दिया जिसे देख कर सदियों का मन लुभाता रहे।

उपासना के क्षेत्र में कनफ्यूशियस सगुण ईश्वर के स्थान पर निराकार ब्रह्म को ही मानते थे।

कनफ्यूशियस की शिक्षाओं का प्रभाव:—

कनफ्यूशियस चीन के लोगों पर ही नहीं, मानव जीवन के सभी उपासकों पर अपार ऋण लाद गये हैं। उनका प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब चीन में सु-शासन का स्वर्ण युग समाप्त होकर उसका स्थान विश्रृंखलता और अराजकता ने ले लिया था। संगठित राष्ट्र के स्थान पर देश, छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त होकर नैतिक अधः पतन की ओर अग्रसर हो रहा था। उस समय कनफ्यूशियस ने ही नीति और सदाचरण के उपदेशों से व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को सु-सम्बद्ध किया।

कनफ्यूशियस की मृत्यु के दो हजार वर्ष पश्चात् एक समय ऐसा भी आया जब चीन के एक सुधार-विरोधी राजा ने उसकी कीर्ति-लता को उखाड़ने का प्रयत्न किया। उसने आज्ञा दी कि कनफ्यूशियस के ग्रन्थ जलवा दिये जांय और उनके सिद्धान्तों को मानने वालों को कठोर दण्ड दिया जाय। इतना होने पर भी कनफ्यूशियस की विचार-धारा रुक न सकी। वह सदियों की सीमाओं को पार करके भी प्रवह-

मान होती रही। आगामी राजाओं ने फिर उन्हीं सिद्धान्तों की स्थापना की और कनफ्यूशियस के आदर्शों पर ही अपने राज्यों की व्यवस्था की।

कनफ्यूशियस के महत्व को एक इतिहासकार के शब्दों में इस प्रकार आंका जा सकता है:—

"कनफ्यूशियस का विचार प्राचीन उपदेशों पर ही आधारित था। यह ठीक है कि वह एक विचारक के रूप में आया किन्तु न उसने कोई नया धर्म चलाया, न नये समाज की सृष्टि की और न नई दिशा की ओर इंगित किया। वह एक निर्माता नहीं वरन् अपने पूर्वजों के प्रति विश्वास एवं प्रेम जगाने वाला उद्धारक था। उसके उपदेशों का चिरस्थायी प्रभाव चीन और जापान की सभ्यता पर पड़ा। उसकी शिक्षाएँ सरकारी रूप से मान्य हुईं। चीनी राष्ट्रीय चरित्र के विकास पर उसका प्रभाव अभी भी दृष्टिगोचर होता है। उसकी पुस्तकें शिक्षालयों में रखी गईं और उसके सिद्धान्तों के बढ़ाने की व्यवस्था की गई। अपने समय में उसने चीनी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। वैयक्तिक पवित्रता एवं परिवार-सामंजस्य पर जो उसने जोर दिया उसका प्रभाव तो चीनी जीवन पर अभी भी वर्तमान है। अपने समय में उसके सिद्धान्त से जो कुछ भी लाभ हुआ हो, किन्तु इतना निश्चित है कि इसके गहरे प्रभाव ने चीन की प्रगति को उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत हद तक रोक दिया। चीनियों की नम्रता, जन-सेवा की भावना एवं आत्म-संयम पर उसकी शिक्षा की स्पष्ट छाप हम अब भी देखते हैं।"

परिश्रम और प्रेम का पुजारी—

महात्मा टॉल्सटाय

क्रिया और प्रतिक्रिया का घनिष्ठ सम्बन्ध है जब एक ही प्रकार की क्रिया की अति हो जाती है तो प्रतिक्रिया अवश्यम्भावी है। यह प्रतिक्रिया प्राकृतिक सामाजिक और वैयक्तिक जीवन आदि सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। ग्रीष्म काल की प्रचण्डता जब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है तब जीवन-दायिनी वर्षा का आगमन होता है; अंधड़ और तूफान के पश्चात् प्रकृति का वातावरण शान्त और स्तब्ध हो जाता है। शासन अथवा समाज के अत्याचार जब चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं तब जन-क्रान्तियाँ होती हैं। इसी प्रकार मानव जीवन में जब एक ही प्रकार के कार्य अथवा व्यवहार की अति हो जाती है तो जीवन की दिशा बदल जाती है। ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं कि सद्गुणी और सदाचारी मनुष्य कुटिल और कामी बनते पाये गये हैं और दुष्ट और दुराचारी मनुष्य महान् सन्त-महात्मा बनते देखे गये हैं। भारतवर्ष में सम्राट अशोक और रूस में महात्मा टॉलसटाय की गणना इस दूसरे प्रकार के मनुष्यों में की जाती है।

महात्मा टॉल्सटाय को यूरोप का अशोक कह सकते हैं। सम्राट अशोक के पास वैभव-विलास, मान-मर्यादा धन-सम्पत्ति और विशाल साम्राज्य आदि सब कुछ था पर जीवन की एक घटना—कलिंग-विजय



परिश्रम और प्रेम का पुजारी :
महात्मा टालसटाय



. सुकरात



मानव स्वातन्त्र्य का म
अब्राहम लिंकन

के भीषण नर संहार ने उसका हृदय-परिवर्तन कर दिया। मानव के बहने वाले रक्त ने उसके हृदय में करुणा और प्रेम की धारा बहादी। इसी प्रकार टॉलसटाय के जीवन में सुख, समृद्धि ऐश्वर्य, विलास, मान और प्रतिष्ठा आदि किसी वस्तु की कमी नहीं थी पर इन सबसे उसका मन ऊब गया। सेवस्टोपोल के चिकित्सालय में हजारों की संख्या में आहत सैनिकों के करुण-क्रन्दन ने उसकी आँखें खोल दीं। विलासी युवक के स्थान पर वह महान् विचारक और सदाचारी सन्त बन गया। यूरोप के करोड़ों व्यक्तियों को उसके सदुपदेशों से शान्ति मिली।

प्रारम्भिक जीवन:—

टॉलसटाय का जन्म २८ अगस्त १८२८ को रूस के यासनाया पोलयाना नामक ग्राम में हुआ था। इनके माता-पिता दोनों ही बहुत प्रतिष्ठित और सम्पन्न परिवार के व्यक्ति थे। पिता का नाम काउंट निकोलस टॉलसटाय और माता का नाम प्रिन्सेज मेरी वाल्कन्सकी था। जन्म के चौदह महीने पश्चात् ही इनकी माता का स्वर्गवास होगया और जिस समय इनकी अवस्था नौ वर्ष की थी, इनके पिता भी इन्हें छोड़कर चल बसे। इस समय इनके चार भाई और एक बहिन थी। इन सबके पालन-पोषण का भार इनकी फूफी पर पड़ा किन्तु काउन्ट लियो टॉलसटाय जो इनका असली नाम था, एक अन्य उदार महिला यरगोलसकी की देख रेख में रहे। इस महिला की देख रेख में इनका पालन-पोषण हुआ। वह इन पर हार्दिक स्नेह रखती थी। अवकाश के समय वह इन्हें तीर्थयात्रियों और साधु-सन्तों की कहानियाँ सुनाया करती थी। उसके प्रेम और धार्मिकता के अंकुर इनके हृदय में जम चुके थे। समय आने पर, अनुकूल वातावरण में वे अंकुर विकसित और पल्लवित हुए।

टॉलसटाय का बचपन अच्छा नहीं बीता। उसके साथी उससे

घृणा करते थे। वह देखने में बहुत कुरूप था। उसकी आँखें छोटी-छोटी और घुसी हुई, नाक लम्बी, चौड़ी और मोटी, माथा दबा हुआ और कान बड़े-बड़े थे। वह अपने मित्रों से प्यार करता था पर उसके मित्र उससे दूर भागते थे। पढ़ने-लिखने में टॉल्सटाय का मन नहीं लगता था। उसके शिक्षक भी उससे प्रसन्न नहीं रहते थे। काजन के विश्व-विद्यालय में टॉल्सटाय ने अध्ययन किया पर वहाँ रहकर भी वह कुछ न सीख सके। उनका विचार राजदूत बनने का था, इस कारण उन्होंने पूर्वी देशों की भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ किया पर वह असफल रहे। फिर कानून का अध्ययन किया पर उसमें भी मन नहीं लगा। हताश होकर वह अपने ग्राम 'यासनाया' लौट आये।

टॉल्सटाय पथ-भ्रष्ट हुए:—

यासनाया में कुछ दिन रहने के उपरान्त टॉल्सटाय पेट्रोग्रेड चले गये। यहाँ कुसंगति में पड़कर वह पथभ्रष्ट होगये। पेट्रोग्रेड का जीवन उनका नारकीय जीवन सिद्ध हुआ। उनमें झूठ बोलने, धोखा देने, जुआ खेलने और मद्य-पान करने की आदत पड़ गई। वह समाज से तिरस्कृत और दुराचारिणी स्त्रियों के सम्पर्क में रह विलासी जीवन व्यतीत करने लगे। उनका आत्मिक और नैतिक अधःपतन इस सीमा तक पहुँच गया कि वह आत्म-हत्या द्वारा अपने नारकीय जीवन को समाप्त कर देना चाहते थे। इसी समय उनको नया दृष्टिकोण और नई चेतना मिली। वह रूसी सेना में भरती होगये। रूसी तोपखाने के साथ वह कॉकेशस चले गये। सैनिक जीवन के परिश्रम और पर्वतीय मुक्त वातावरण में उनके शारीरिक और मानसिक विकास की ग्रन्थियाँ खुल गईं। साहसी प्रवृत्ति और वीरता पूर्ण कृत्यों के फलस्वरूप उन्हें प्रधान सेनापति प्रिंसगार्चाकफ के दल में स्थान मिला

और वह सेवस्टोपोल चले गये। यहीं से उनके साहित्यिक जीवन का आरम्भ हो जाता है और वह उपन्यास तथा कहानियाँ लिखने लगते हैं।

नये जीवन का सूत्रपात:—

सेवस्टोपोल के अस्पताल में टॉल्सटाय ने युद्ध में आहत बाइस हजार सैनिकों को कष्ट से कराहते हुए देखा। उनका हृदय हाहाकार कर उठा। साम्राज्य-लिप्सा और वीरता का यह दुःखान्त नाटक, उनके हृदय में विद्रोह का विधायक बन गया। सैनिक जीवन का परित्याग कर वह सेंटपीटर्सबर्ग लौट आये। यहाँ वह साहित्य की साधना और समाज की सेवा में तल्लीन रहने लगे।

योरप-यात्रा:—

१८५७ ई० में टॉल्सटाय ने यूरोप-यात्रा के लिये प्रस्थान किया। वहाँ फ्राँस की राजधानी पेरिस में एक व्यक्ति को फाँसी दिये जाने का दृश्य अपनी आँखों से देखा। उनका कोमल हृदय इस बर्बर कृत्य के आघात को सहन न कर सका और वह सदा के लिये इस प्रथा के विरोधी हो गये। इसी समय उन्होंने स्विटजरलैन्ड और जिनेवा आदि की यात्रा भी की। यात्रा के बीच उन्हें अंग्रेजों के दम्भपूर्ण व्यवहार के प्रति बहुत ग्लानि हुई। १८६० ई० में उनके बड़े भाई की मृत्यु हो गई। वह विरक्त और उदास रहने लगे। जीवन की निस्सारिता के नग्न-चित्र पाप-पूर्ण विलासी जीवन, छल, कपट, दुराचार पीड़ा और मृत्यु ये सब उनकी आँखों के आगे एक-एक करके आने लगे। उनका भावुक हृदय विद्रोह कर उठा। सत्य की खोज ही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया।

यूरोप-यात्रा से लौटने के उपरान्त टॉल्सटाय ने प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या को सुलझाने के लिये नये ढँग के स्कूल खोल दिये। इन

स्कूलों में बड़े और छोटे का भेद भाव नहीं था और विद्यार्थियों को काफी स्वतन्त्रता रहती थी। उन के मन पर नये विचारों के संस्कार डाले जाते थे। जब रूस की सरकार ने यह देखा तो उसने स्कूल बन्द करा दिये और टॉलस्टाय को किसानों से दूर चले जाने की आज्ञा हुई। यह भय था कि कहीं वह किसान और मजदूरों को शासन के प्रति विद्रोही न बनादे। टालस्टॉय के मन में फिर अशान्ति उत्पन्न हुई। उन्हें लगा कि जैसे उनके कार्यों का कोई मूल्य ही नहीं। यदि जीवन इतना मूल्य हीन है तो जीवित रहने से क्या लाभ? उन्होंने दूसरी बार आत्मघात करने का निश्चय किया। किन्तु इस बार भी वह अपने निश्चय में सफल न हुए। इस बार इन्हें जीवित रहने की प्रेरणा दी एक सत्रह वर्षीया सुन्दरी सोफिया ने जिससे वह बहुत पहले से ही प्रेम करते थे।

वैवाहिक जीवन:—

सन् १८६२ ई० में सोफिया से विवाह करके टॉलस्टाय ने वैवाहिक जीवन में प्रवेश किया। यद्यपि उनकी उम्र सोफिया से दूनी थी पर फिर भी सोफिया के हृदय में उनके प्रति बहुत प्रेम और आदर की भावना थी। टॉलस्टाय को अपने साहित्यिक कार्यों में अपनी पत्नी से बहुत सहायता मिलती थी। उनका लेखन अच्छा नहीं था। अतः छापेखाने में भेजने के लिये उनके हस्त लिखित ग्रन्थों की सुन्दर और शुद्ध प्रतिलिपियाँ सोफिया ही करती थी। इसी समय टॉलस्टाय ने दो प्रसिद्ध उपन्यास लिखे 'अन्ना केरीनिना' तथा 'युद्ध और शान्ति'। इन उपन्यासों से उनकी धूम सारे यूरोप में मच गई। महान् लेखक के रूप में उनका सर्वत्र आदर होने लगा।

टॉलस्टाय के ऊपर यश और धन की वर्षा होने लगी। साधुवृत्ति के होने के कारण वह धन का संचय तो करना ही नहीं चाहते थे।

उनको इच्छा हुई कि वह किसान और मजदूरों के जीवन को उन्नत बनाने के लिये कुछ धन लगायें पर उनकी पत्नी ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। उनकी सेवा में तल्लीन रहने वाली पत्नी धन-दौलत के पीछे उनसे विमुख होगई। टॉल्सटाय के पुत्र भी अपव्ययी होगये थे और वे उनका कहना नहीं मानते थे। अपने ही आत्मीयजनों के इस निर्मम व्यवहार ने उनके हृदय को जर्जर कर दिया। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है:—"शायद तुम विश्वास नहीं करोगे कि सभी मुझसे कितनी घृणा करते हैं और मेरा जीवन कितना भार बन गया है।"

जीवन का अन्त:—

जीवन को भार बनाकर तो टॉल्सटाय जीवित ही नहीं रहना चाहते थे। ऐसे ही अवसरों पर जब अपना जीवन उन्हें भार दिखाई पड़ने लगता था वह उसका अन्त कर देना चाहते थे। दो बार उन्होंने प्रयत्न भी किया पर किसी प्रेरणा किसी अनुभूति ने उनको बचा लिया। अब उनका शरीर भी साथ नहीं दे रहा था। वह सम्मान से जीना चाहते थे और वह उन्हें अपने परिवार में नहीं मिल रहा था। अन्त में एक रात्रि को वह परिवार का मोह और माया के बन्धनों को तोड़कर घर से निकल पड़े। उनके साथ उनका एक विश्वास पात्र साथी भी था रात्रि का समय था बर्फ गिर रहा था। उनका दुर्बल शरीर प्रकृति के इस प्रकोप का सामना न कर सका। पास के ही एक स्टेशन पर उन्हें उतर जाना पड़ा। वहीं स्टेशन मास्टर के घर १० नवम्बर १९१० को वह जीवन की ऐहिक लीला समाप्त कर चिर-शान्ति की गोद में सो गये।

टॉल्सटाय के चारित्रिक गुण तथा विशेषताएँ—करुणा और प्रेम के प्रतीक:—

टॉल्सटाय का हृदय विशुद्ध प्रेम का भंडार था। यद्यपि इन्हें

अपने माता-पिता का प्रेम प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि इनके बचपन से ही उनका देहान्त हो चुका था, फिर एक अत्यन्त उदार-हृदया महिला यरगोलसकी ने अपने हृदय का सच्चा स्नेह इन्हें दिया। टॉलसटाय स्वयं भी अपने भाई-बहिनों को बहुत प्रेम करते थे। वह अपने मित्रों और सहपाठियों को भी बहुत चाहते थे, चाहे वे इन्हें न चाहते हों। आगे चल कर जब टॉलसटाय ने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ किया तो वह सरलता की प्रतिमूर्ति किसानों और श्रमिकों से प्रेम करने लगे। उनका कहना था—"जीवन के लिये परिश्रम और प्रेम—ये दो वस्तुएं परम आवश्यक हैं। मनुष्य को सरल स्वभाव, परिश्रमी तथा दयालु होना चाहिये।" हम देखते हैं कि उन्होंने जीवन भर इसी आदर्श का पालन किया।

विश्व-कल्याण की भावना:—

टॉलसटाय का प्रेम कुछ इने-गिने व्यक्तियों के लिये ही सीमित न था। वह तो मानव जाति के हितचिन्तक थे। बचपन में उन्होंने अपने भाई निकोलस से मिलकर एक संस्था को जन्म दिया था जिसका नाम रखा था 'आंट-ब्रादर्स'। इस संस्था का उद्देश्य संसार के लोगों में विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्रसार करना था। इसकी स्मृति बनाए रखने के लिये उन्होंने एक पहाड़ी पर हरी डाल का रोपण किया था। जिस समय टॉलसटाय की मृत्यु की घड़ियाँ निकट आ गईं तो उन्होंने यही इच्छा व्यक्त की थी कि मुझे उसी पहाड़ी पर दफनाया जाय जहाँ विश्व-शान्ति की प्रतीक हरी डाली लगाई गई है।

टॉलसटाय अपनी यूरोप-यात्रा में पेरिस भी गये जहाँ उन्होंने एक व्यक्ति को फाँसी का दण्ड पाते हुए देखा। उनका हृदय जीवन भर के लिये इस प्रथा का विरोधी बन गया और वह मानव जाति के

कल्याण-कार्य में लग गये। उनके विचारों से रूस अथवा यूरोप के निवासियों को ही नहीं, विश्व के सभी पीड़ित मनुजों को शान्ति मिली है।

सरल जीवन:—

महात्मा टॉल्सटाय अत्यन्त सरल स्वभाव और साधुवृत्ति के व्यक्ति थे। यह सरलता उनके रहन-सहन, बोल-चाल तथा कार्य-व्यवहार आदि सब में पाई जाती थी। आडम्बर तो उन्हें छू तक नहीं गया था। वह जो कहते थे वही करते थे। यद्यपि उनके पास पुस्तकों के विक्रय से बहुत सम्पत्ति एकत्र हो गई थी पर उनमें कभी धन का गर्व उत्पन्न नहीं हुआ। धन को तो वह पाप की जड़ समझते थे। इसलिये उसे दीन दुखियों में बाँट देना चाहते थे। उनका कहना था, "सुई के नकुए में से ऊँट निकल जाना तो सम्भव है किन्तु धनवान् आदमियों का स्वर्ग में प्रवेश करना असम्भव है।" धन के विषय में उन्होंने लोगों को यही उपदेश दिया:—

"इस पृथ्वी पर अपने लिये धन जमा मत करो; क्योंकि उसे काई और कीड़े नष्ट कर देते हैं, अथवा चोर चुरा ले जाते हैं। किन्तु तुम स्वर्ग में अपने लिये धन जमा करो जहाँ न काई लगती है, न कीड़े ही खाते हैं और न चोर ही दरवाजा तोड़ कर उसे चुरा ले जा सकते हैं। फिर जहाँ तुम्हारा धन रहेगा वहीं तुम्हारा मन रहेगा।"

सच्चे ईश्वर-भक्त

यद्यपि आज का रूस ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता और उस समय भी यह लहर चल चुकी थी पर टॉल्सटाय सच्चे अर्थों में ईश्वर-भक्त थे। उनका विश्वास था कि इतने बड़े विश्व का नियन्ता कोई अवश्य है। उन्होंने लिखा:—

'विश्व-जीवन किसी के संकल्प से चल रहा है—सारे विश्व के और हमारे जीवन से कोई अपना तात्पर्य सिद्ध करता है। उस जीवन संकल्प शक्ति का अर्थ समझने के लिए पहले हम से जिस कार्य की आशा का जाती है, उसे करना चाहिये।"

ऐसे कई अवसर आये जब टॉल्सटाय का मन ईश्वर की ओर से हटने लगा पर तभी उन्हें निराशा और दुष्कल्पनाओं ने आ घेरा किन्तु जब उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति की तो उन्हें उत्साह और जीवन की प्रेरणा मिली। 'मेरी मुक्ति कहानी में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है:—

"तब मैंने अपने मन में कहा—उसका अस्तित्व है'। इसे स्वीकार करने के अनन्तर क्षण भर में मेरे अन्दर जीवन उठ खड़ा हुआ और मुझे जीवन की संभवनीयता और आनन्द का अनुभव हुआ।" इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा है:—

"जब ईश्वर के अस्तित्व में मेरे विश्वास का लोप हो जाता है तब मानो मेरी जीवन शक्ति का अन्त हो जाता है, तब मैं अपने को जीता हुआ नहीं अनुभव करता। अगर मेरे अन्दर उसे पाने की एक धुंधली सी आशा न होती तो अब तक कभी का मैं अपनी हत्या कर चुका होता। अपने को सचमुच जीता हुआ तो मैं तभी अनुभव करता हूं जब तक मुझे 'उसकी' अनुभूति होती रहती है और मुझे उसकी खोज रहती है। 'तुम और क्या खोजते हो?' मेरे अन्दर एक आवाज हुई। "यही वह है। वह है जिसके बिना कोई जी नहीं सकता। ईश्वर को जानना और जीवित रहना एक ही बात है। ईश्वर ही जीवन है।"

चर्च के विषय में टाल्सटाय कहा करते थे कि वे ईसामसीह के

सिद्धान्तों के विरुद्ध कार्य करते हैं। ईसामसीह और उनके सदुपदेशों के प्रति उनके हृदय में बहुत आदर-भावना थी किन्तु चर्च की वर्तमान पद्धति को वह दोषपूर्ण समझते थे। उन्होंने कईबार चर्च के ऊपर योग्यता पूर्ण आक्षेप किये और इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि उन्हें चर्च से निकाल दिया गया पर उन्हें इसकी चिन्ता कब थी। किसी के डर से वह सत्य को छिपाना नहीं जानते थे।

किसान और मजदूरों के हितैषी:—

महात्मा टॉल्सटाय किसान और मजदूरों के बड़े भक्त थे। वह उनके सरल जीवन से बहुत प्रभावित थे। उस समय रूस में किसान और मजदूरों पर अत्याचार भी बहुत किये जाते थे। उनका हृदय इनके लिये सदैव करुणा से भरा रहता था। वह चाहते थे शासन उनके उत्थान का प्रयत्न करे और जब ऐसा नहीं हुआ तो वह स्वयं प्रयत्न करते थे। अपना सैनिक जीवन परित्याग करने के पश्चात् एक स्कूल खोला था जिसमें किसान और मजदूरों के बच्चों को विशेष सुविधाएँ दी जाती थीं। यही देखकर सरकार ने यह स्कूल बन्द करा दिया था। कृषि कर्म के विषय में उनके कितने उच्च विचार थे यह उनके इन शब्दों से प्रकट होता है—"यदि प्रत्येक व्यक्ति कृषि कर्म को अपना कर्त्तव्य स्वीकार कर ले, अर्थात् अपनी ही मेहनत से पैदा किये हुए अन्न पर गुजर करे तो मनुष्य में एका और प्रेम बढ़ जाय और सारी यातनायें दूर हो जायें।"

जीवन के अन्तिम दिनों में टॉल्सटाय स्वयं किसानों की वेश-भूषा में रहते और उन्हीं जैसा जीवन व्यतीत करने लगे थे। उनके प्रति किसानों के प्रेम का परिचय इसी घटना से मिलता है कि जब उनकी मृत्यु हुई तो हजारों किसान उनके अन्तिम संस्कार में भाग लेने के लिये उमड़ पड़े पर सरकार ने ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।

क्रान्ति के उद्भावक:—

उस समय का रूस आज के रूस जैसा नहीं था। आज के रूस का जन-जीवन तो समानता के सिद्धान्त पर आधारित है पर उस समय जारशाही का बोलबाला था। जार और उसके सामन्तगण प्रजा पर मनमाने अत्याचार करते थे। वे स्वयं तो वैभव-विलास में डूबे रहते थे किन्तु किसान और श्रमिकों का जीवन नारकीय बना रहता था। उनसे कई तरह के कर लिये जाते थे, मुफ्त में काम कराया जाता था और शिक्षा तथा रहन-सहन की कोई सुविधा नहीं दी जाती थी।

टॉलस्टाय ने इन अत्याचारों का विरोध किया। उन्होंने जारशाही के विरुद्ध आवाज उठाई। अपने उपन्यास कहानियों और लेखों में उन्होंने साधारण जनता की मुक्ति के लिये, जार के अत्याचारों के विरुद्ध बहुत कुछ लिखा। वह जन-साधारण के कल्याण के लिये लिखना चाहते थे। उनका विश्वास था कि जनता में जागृति उत्पन्न हो चुकी है, अब तो उसका नेतृत्व करने के लिये एक पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता है। उनके क्रान्तिकारी विचारों का परिणाम यह हुआ कि आगे चल-कर रूस की जनता को पथ-प्रदर्शक मिले और आज का रूस उस क्रान्ति का परिणाम है।

सफल लेखक:—

महात्मा टॉलस्टाय उच्च-कोटि के सन्त और विचारक तो थे ही, साथ ही वह एक सफल साहित्यिक भी थे। उनके उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध और विवेचनात्मक ग्रन्थ संसार के सभी भागों में बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। उनके प्रथम उपन्यास 'बचपन' ने ही साहित्य जगत् में उनके लेखक होने की धाक जमा दी थी। इसके अनन्तर तो एक-एक करके उनके ग्रंथ निकलते ही गये। उनके उपन्यासों में 'बचपन' एक

'रूसी जमींदार', 'कज्जाक', 'अन्ना केरीनिना' और 'युद्ध और शांति' प्रसिद्ध हैं। कुल मिलाकर उनके ग्रंथों की संख्या लगभग पचास है। साहित्यिक क्षेत्र में उनकी लोक-प्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि एक वर्ष के अंदर ही उनके ग्रंथों की सवा करोड़ प्रतियाँ बिक गईं।

टॉल्सटाय ने धर्म, समाज, विज्ञान और कला आदि पर अपनी लेखनी चलाई है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों के विषय में भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। उनकी लेखन-शैली अत्यन्त प्रभावशाली और सुबोध है। वह पाठक के मन को अपने विषय की ओर आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता रखते हैं। वह जिस बात का वर्णन करते हैं, चित्र-सा खींच देते हैं।

महान् दार्शनिक:—

महात्मा टॉल्सटाय जहाँ सफल साहित्यिक थे वहाँ महान् दार्शनिक भी थे। उन्होंने दूसरों के दर्शन का अध्ययन भी किया किन्तु साथही अपने दर्शन से दूसरों को प्रभावित भी किया। उनकी विचार-धारा मौलिक और हृदय-ग्राही है। उनकी विचार-धारा के कुछ अंश यहाँ दिये जारहे हैं:—

"त्याग के बिना धार्मिक जीवन न हुआ और न होगा। त्याग का अर्थ यह है कि मनुष्य इन्द्रियों की प्रवृत्ति से स्वतंत्र होकर मन की वासनाओं को बुद्धि के आधीन कर दे। वासनाएँ दो प्रकार की हैं:— मिश्रित और मूल। खेल तमाशा, बातचीत करने की वासना तो मिश्रित वासना है और अत्याहार, आलस्य और काम मूल वासना है। बहुत ज्यादा खाने से मनुष्य आलसी होता है और आलसी व्यक्ति काम भाव पर कैसे विजय पा सकता है? इसलिये प्रत्येक धर्म के अनुसार त्याग की पहली सीढ़ी जिव्हा को वश में रखना या उपवास करना है।

धार्मिक जीवन की पहली शर्त त्याग है और त्याग पूर्ण जीवन की पहली शर्त उपवास है।"

"मनुष्य मात्र की सेवा का यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता कि हम सन्तुष्ट व्यक्तियों को तो व्यसन के और सामानों की व्यवस्था करदें तथा दरिद्रों को भूख के कारण मर जाने दें।" इसीलिये उनका कथन है—"जिनके पास दो कोट हैं वे एक कोट उन्हें देदें जिनके पास एक भी नहीं है, और जिसके पास भोजन है वह भी ऐसा ही करें।"

टॉल्सटाय के विचारों से महात्मा गांधी बहुत प्रभावित हुए थे। वह उन्हें अपना गुरू मानते थे।

सत्यनिष्ठः—

सुकरात

सापेक्षिक सत्य ही इस दृश्य-जगत् की वास्तविकता है। जो बात आज सर्व-साधारण की दृष्टि में भी महत्त्वपूर्ण है वह आज से तेईस सौ वर्ष पूर्व एथेन्स के निवासियों की दृष्टि में घातक अपराध समझा गया जिसके फलस्वरूप महात्मा सुकरात को जो विख्यात रोमन वक्ता सिसरो के शब्दों में "दार्शनिक चिन्तन को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतार लाये थे," जहर का प्याला पिलाकर प्राण दण्ड दिया गया। उदाहरणों की कमी नहीं है कि जब अपने ही उपकार को उसी देश के व्यक्ति उसके ही असामयिक मृत्यु का कारण बन अनजान में आने वाली पीढ़ियों को उन महान् आत्माओं के सिद्धान्तों की सत्यता का पाठ पढ़ाते हैं। एथेन्स में सुकरात ही नहीं, पेलिस्टाइन में महात्मा ईसा, अमेरिका में अब्राहीम लिंकन, रूस में महात्मा लेनिन एवं भारत में महात्मा गांधी इस कटु किन्तु सत्य उक्ति के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

विद्या-कला-कौशल तथा व्यापार आदि प्रत्येक दृष्टि से वह यूनान का स्वर्ण युग था जब ईसा से ४६६ वर्ष पूर्व मूर्तिकार पिता साफरोनिस्कस तथा नर्स माँ फेनारेट ने सुकरात जैसी महान् आत्मा को जन्म दिया। कुछ बड़े होने पर उन्होंने अपने पिता के धन्धे में हाथ बटाया किन्तु राजकीय नियमानुसार फौज में भर्ती होना अनिवार्य था सुकरात जिसने सर्व प्रथम नियम का आदर करना सिखाया स्वयं

भी अपवाद न बना। सैनिक सुकरात ने कई महत्वपूर्ण युद्धों में भाग लिया तथा अपने कर्तव्यों का कुशलता एवं मनोयोग के साथ पालन करने के लिये तो वह अपने साथियों में प्रसिद्ध ही थे। नाटा कद, मोटा पेट और बाह्य स्वरूप अत्यन्त ही कुरूप था इस पर भी प्रायः नंगे पैर ही रहा करते थे तथा वेश-भूषा भी साधारण ही धारण किया करते थे वह स्वयं प्रतिदिन नियम-पूर्वक व्यायाम करते थे। तथा स्वस्थ रहने के लिये व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक बताते थे। उनको घूमने का बहुत शौक था और वह दिन भर घूमते ही रहते थे। आपने जीवन पर्यन्त एथेन्स में ही रहकर देश की सेवा की।

सुकरात का गृहस्थ-जीवन उसकी दूसरी पत्नी जेथिप्पी के कारण, जो इतनी ही अधिक कर्कशा एवं चिड़चिड़े स्वभाव की थी जितना कि सुकरात भोले एवं शांत स्वभाव के थे, दुःखमय था। आपका विवाह के सम्बन्ध में विचार, जो एक व्यक्ति के पूछे जाने पर आपने व्यक्त किया था, जन साधारण में उक्ति बन गई, आपने कहा था "आप विवाह करें या न करें आपको दोनों ही अवस्थाओं में पछताना पड़ेगा।" कहा जाता है कि एक बार जेथिप्पी बहुत बकी पर प्रशान्त सागर सदृश्य महात्मा सुकरात शान्त ही रहे उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया इस पर जेथिप्पी की क्रोधाग्नि और भी भभक उठी और उसने मैला पानी लाकर उनके ऊपर डाल दिया इस पर सिर्फ उन्होंने इतना ही कहा कि, "मैं तो पहिले ही जानता था कि जेथिप्पी इतना गरजने के बाद बिना बरसे न रहेगी।" सुकरात यह समझकर कि जेथिप्पी स्वयं नहीं जानती कि वह क्या करती है सदैव क्षमा कर दिया करते थे। जब जेथिप्पी ने बीच बाजार में सुकरात का कोट फाड़ डाला तो इस पर मित्रों ने सलाह दी कि वह उसको खूब पीटें जिससे उसे दुष्कृत्य का परिणाम मिले परन्तु सुकरात ने बहुत ही सुन्दर उत्तर दिया "जिस प्रकार सईस लोग दुष्ट घोड़ों के साथ रह कर उन्हें ठीक करने का प्रयत्न करते हैं उसी

प्रकार मैं भी एक चिड़चिड़े स्वभाव वाली स्त्री के साथ रहता हूँ और जिस प्रकार सईस यदि उस घोड़े पर काबू पा लेता है तो वह दूसरों को आसानी से काबू में रख सकता है; उसी प्रकार जेथिप्पी की संगत से मै शेष जगत् का सामना करना सीखता हूँ।"

एक बार एलसीबियेडस ने सुकरात से कहा कि जेथिप्पी की भर्त्सना असहनीय है इस पर वह बोले कि मैं उसी प्रकार इसके सुनने का अभ्यस्त हूँ जिस प्रकार आप बतखों की घें घें सुनने के। "परन्तु बतखें तो मुझे अण्डे और चूजे देती हैं" एलसीबियेडस ने कहा। सुकरात ने उत्तर दिया "जेथिप्पी मेरे बच्चों की माँ है।" पहिली स्त्री से जिसका नाम माइटो था दो पुत्र उत्पन्न हुये और जेथिप्पी से एक।

'सादा जीवन और उच्च विचार' कहावत का जीता जागता नमूना हमें सुकरात में मिलता है। उनके भोजन में कभी भी आचार-चटनी आदि वस्तुओं को स्थान नहीं मिला। उनका कथन था कि वही पेय अच्छा है जिसका पान करने के पश्चात् दूसरे पेय की आवश्यकता नहीं रह जाती। उन्होंने एक बार कुछ धनी व्यक्तियों को भोजनार्थ आमंत्रित किया। जेथिप्पी ने घटिया भोजन परोसने पर असन्तोष प्रकट किया तो इस पर उन्होंने कहा कि यदि वह समझदार होंगे तो उन्हें यह भोजन बुरा न लगेगा और लगेगा भी तो वह सहन कर लेंगे किन्तु यदि वे मूर्ख हैं तो हमें लज्जा किस बात की।', दाम्पत्य जीवन से निराशा मान अपमान की सांसारिक सीमाओं का उल्लंघन कर सुकरात ने स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त की और फिर समस्त विश्व उस जितेन्द्रिय के सम्मुख झुक गया।

लगभग पचास वर्ष की आयु में आपने सैनिक जीवन का परित्याग कर दिया और फिर शेष जीवन अपने विचारों की अभिव्यक्ति करने तथा दार्शनिक चिन्तन में व्यतीत किया। असाधारण प्रतिभा के

कारण आपकी गणना अपने जीवन-काल में ही विद्वान् व्यक्तियों में होने लगी थी। देश और राष्ट्र सम्बन्धी विषय उनकी रुचि को अपनी ओर आकृष्ट न कर सके, केवल मनुष्य और स्त्रियाँ ही उनके चिन्तन का विषय थे। गलियों और बाजारों में अपने चारों ओर घूमते-घूमते कुछ लोगों को एकत्र कर अपना कार्य प्रारम्भ कर देते थे। उनके समझाने का ढंग बात चीत द्वारा था। लोग उनसे प्रश्न पूछें और वह उन प्रश्नों का उत्तर दें। वह सभी वर्ग के व्यक्तियों से बात किया करते थे। छोटे बड़े तथा धनवान् और निर्धन की उनकी दृष्टि में कोई भेद-भाव न था। उनकी बातचीत का ढंग साधारण था तथा अपरिचित व्यक्ति यह अनुमान भी न कर पाते थे कि सुकरात जैसा ज्ञानी पुरुष बोल रहा है। दर्पण देखना विशेषकर नवयुवकों के लिये वह लाभ-प्रद बताया करते थे। उनका कथन था कि सुन्दर युवकों को दर्पण इसलिये देखना चाहिये कि वे अपने चरित्र को भी सुन्दर बना सकें और कुरूप युवकों को दर्पण इसलिये देखना चाहिये कि वे अपनी कुरूपता को अच्छी शिक्षा और सच्चरित्रता के द्वारा छिपा सकें।

सुकरात में विद्या और विनम्र गुण एवं शील का अद्भुत सम्मिश्रण दृष्टि गोचर होता है। क्रोध तो उन्हें कभी आता ही न था। यद्यपि उनकी उक्तियां सुनकर प्रायः लोग उन पर झुंझला जाया करते थे। कभी-कभी व्यक्ति उनके बाल उखाड़ने लगते और कोई कोई व्यक्ति उनका मजाक उड़ाने तथा अपमान करने से भी नहीं चूकते थे किन्तु क्षणिक आवेश दिलाने वाली घटनायें उनके प्रशान्त मानस को क्षुब्ध करने में सर्वथा असफल ही रहती थी। एक समय लोगों ने उन्हें लातों से मारा। इस पर एक व्यक्ति ने जो उनकी असीम सहन-शीलता को देख कर चकित था, पूछा 'आपने इसे शान्ति पूर्वक क्यों सहन कर लिया ?' "गधे यदि लात मारें तो क्या हमें भी उन्हें लात मारना चाहिये।' सुकरात ने उत्तर दिया। एक समय एलसीबियेडस नामक धनी व्यक्ति

ने इन्हें मकान बनाने के लिये बहुत सा स्थान देना चाहा परन्तु इन्होंने यह कहकर लेने से मना कर दिया कि "यदि मुझे एक जोड़े जूते की आवश्यकता हो और आप मुझे पूरी खाल देना चाहें तो क्या उसका लेना मेरे लिये उपहासास्पद नहीं है ?" इसी प्रकार चीनस नामक व्यक्ति ने एक बार सुकरात से कहा, "मैं निर्धन हूँ आपको देने के लिये मेरे पास अपने अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।" इस पर उन्होंने कहा— "क्या यह सबसे बड़ा दान नहीं है इससे बड़ा दान और हो ही क्या सकता है।"

आध्यात्मवाद, इच्छा-शक्ति तथा आत्मा की अमरता में उनका दृढ़ विश्वास था। जिस बात को उनकी विवेक-बुद्धि ठीक स्वीकार करती थी उसे निर्भयता-पूर्वक कहने में उन्हें कभी संकोच न हुआ। सत्य बात को कहने तथा करने में यदि प्राणों की भी बाजी लगाना पड़े तो भी उनके लिये चिन्ता की कोई बात न थी। प्रसंग ऐसा आता है कि जब ईसा से ४०४ वर्ष पूर्व एथेन्स सम्राज्य का अन्त हो रहा था तो वहां के तत्कालीन शासक ने कुछ व्यक्तियों को, जिन्हें सुकरात निरपराध समझते थे, गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। सुकरात ने आज्ञा पालन करने से मना कर दिया। उस समय यदि प्रजा विद्रोह करके शासक को पदच्युत न करती तो तभी प्राण-दण्ड दे दिया जाता। उनका कथन था "सद्गुण विहीन व्यक्ति किसी भी काम का नहीं। एक ही पुण्य है वह है ज्ञान और एक ही पाप है वह है अज्ञान। मनुष्य प्रतिष्ठा का अधिकारी केवल अच्छे घर में जन्म लेने से तथा धनवान् होने से ही नहीं हो सकता है। ज्ञानवान् व्यक्ति ही वास्तविक प्रतिष्ठा का अधिकारी होता है।" संक्षेप में, उनके उपदेशों का सार 'अपने आपको जानो' (Know thyself) वाक्य में निहित है। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि जीवन को पवित्र बनाने तथा आध्यात्मिक उन्नति करने के लिये धन-वैभव का मोह छोड़ कर सदाचार एवं सद्गुणों की ओर

प्रवृत्त होना ही एथेन्स के निवासियों का एक मात्र कर्तव्य है। सांसारिक सुखों में फंसे, आर्थिक लिप्सा में संलग्न एथेन्स का पतन उनको स्पष्ट दीख रहा था।

"न्यायालयों में मनुष्यों को केवल दण्ड देने के लिये लाया जाता है न कि किसी प्रकार का उपदेश अथवा शिक्षा देने के लिये।" आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व अत्यन्त सरल ढंग से न्याय का उद्देश्य केवल दण्ड द्वारा दिखावा न होकर सुधार होना चाहिये, कहा था। इससे स्पष्ट है कि कारागृहों को अपराधियों के सुधार का स्थान बनाया जाना चाहिये न कि कठोर दण्ड प्रदान कर साधारण अपराधियों को भी कठोर अपराधी बनाया जावे। विचारों की दूरदर्शिता इससे स्पष्ट हो जाती है कि आजकल बीसवीं शताब्दी में भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों ने अपराधियों को सुधारने तथा उन्हें मनुष्य समझने के नगण्य प्रयत्न किये हैं। सभ्यता के उच्च शिखर पर आसीन कहा जाने वाला समाज आज भी इस विचार को पूर्णरूपेण कार्य रूप में परिणित नहीं कर पाया है। सुकरात के तर्कों का प्रति उत्तर किसी से भी न बन पड़ता था उनको सुनकर लोग अवाक् हो जाया करते थे। उनके जीवन का उद्देश्य एथेन्स के निवासियों को सुखी बनाना था उन्होंने अपने इस कर्तव्य का पालन सदैव ईश्वरीय आज्ञा समझकर किया तथा अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिये सम्पूर्ण शक्तियां लगा दीं।

बात ईसा से ३९९ वर्ष पूर्व की है जब सुकरात की अवस्था सत्तर वर्ष की थी दिन प्रतिदिन विरोधी की संख्या बढ़ती गई। उनके शत्रुओं ने उन पर दो आरोप लगाये। प्रथम तो यह था कि उसने प्रजातंत्र के स्वामियों की अवहेलना की तथा उनकी उपेक्षा की। दूसरा आरोप नगर के नवयुवकों को बिगाड़ने तथा गलत रास्ते पर ले जाने का था। इन्हीं आरोपों के आधार पर उनको न्यायालय में उपस्थित किया गया।

एथेन्स के तत्कालीन प्रसिद्ध प्रवक्ता लाइसियस ने आरोपों का बचाव (Defence) तैयार किया परन्तु सुकरात ने उसे सधन्यवाद लौटा कर दृढ़ प्रतिज्ञता एवं चारित्रिक-श्रेष्ठता का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। सामयिक जनता के लिये ही नहीं वरन् आने वाली पीढ़ियों के लिये भी। उन्होंने कहा कि पेशेवर लोगों की भाँति मुझे अपना बचाव नहीं करना है। सुन्दर सुन्दर वस्त्र एवं जूते अन्य व्यक्तियों के लिये उपयोगी हो सकते हैं किन्तु मेरे लिये नहीं। मैं इस बचाव पत्र का उपयोग नहीं कर सकता हूँ। एक दार्शनिक को अपने उच्च विचार एवं आत्म-विश्वास पर दृढ़ रहने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिये।

न्यायाधीश के समक्ष किसी प्रकार का बचाव पेश न करके सुकरात ने ईश्वर के प्रति अखण्ड विश्वास प्रदर्शित किया। अपने सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए उन्होंने न्यायाधीशों से कहा मैंने ईश्वर की आज्ञा को सर्वोपरि मानकर अपने कर्तव्यों का पालन किया है। मैं इस तथ्य की सत्यता से भी अनभिज्ञ नहीं हूँ कि ईश्वरीय अधिकारों के समक्ष आपके तुच्छ अधिकार नहीं के बराबर हैं। सत्य की खोज मेरे लिये सर्व शक्तिमान ईश्वर का आदेश है। यदि आप लोग यह प्रस्तावित करें कि सत्य की खोज छोड़ने पर मुझे मुक्त किया जायगा। तो मैं इसके लिये केवल आपको धन्यवाद ही दूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है और यही मेरी आकांक्षा है कि जब तक मुझ में तनिक सी भी शक्ति और एक भी सांस चलती रहे तब तक मैं सत्य की खोज में निरन्तर रत बना रहूँ। सुकरात के इस वक्तव्य ने न्यायाधीशों को चिढ़ा दिया फलतः उसको प्राण दण्ड दिया गया। तत्कालीन राजकीय नियमानुसार वह प्राण-दण्ड के स्थान पर किसी अन्य दण्ड का सुझाव देकर मुक्ति पा सकते थे परन्तु उन्होंने उच्चादर्शों की रक्षा के हेतु प्राण-दण्ड ही स्वीकार किया। उन्होंने केवल यह सुझाव अवश्य प्रस्तुत किया कि, मुझे जन-हित-चिंतक के रूप में माना जाय तथा मेरी मृत्यु के अवसर पर उत्सव मनाये जावें

और भोजों आदि की व्यवस्था की जावे।" सुझाव स्वीकार कर लिया गया और आज ढाई हजार वर्ष व्यतीत होने पर हम लोग उन्हें एथेन्स के जन-हित-चिंतक के रूप में ही नहीं वरन् सारे मानव-समाज के जन-हित-चिंतक के रूप में देखते हैं। इतना ही नहीं, आने वाली सन्तितियाँ भी इसी रूप में सुकरात के अमर यश का गान करती रहेंगी।

इसी बीच में यह भी सुझाव आया कि सुकरात यदि तीस मिनास (तत्कालीन एथेन्स का सिक्का) का आर्थिक दण्ड देना स्वीकार कर लें तो प्राण-दण्ड से मुक्त किये जा सकते हैं। उनके मित्रों ने बहुत चाहा कि यह व्यवस्था स्वीकार कर ली जावे किन्तु क्षणिक सांसारिक प्रलोभन तथा जीवित रहने की मोहमयी लिप्सा से सुकरात जैसे आत्म-ज्ञानी तथा महानता के प्रतीक विचलित न हुये। उन्होंने किसी की एक नहीं मानी और अत्यन्त शान्ति पूर्वक यही कहा "सच्चे रास्ते पर कौन है इसे अभी तो परमात्मा ही जानता है और इसका सही निर्णय भविष्य करेगा वैसे मेरा विदा होकर मरने का समय आ गया है।" उनकी मृत्यु-दण्ड की तिथि एक धार्मिक उत्सव आ जाने के कारण तीन सप्ताह के लिये स्थगित कर दी गई कारागार में उन्हें हथकड़ी पहिन कर ही रहना पड़ता था किन्तु वह सदैव प्रसन्न-चित्त ही रहा करते थे तथा सदैव की भाँति अपने मित्रों का स्वागत उसी प्रकार आदर पूर्वक सुमधुर मुस्कान से किया करते थे। अन्तिम दिनों जब वह कारागार में मृत्यु-दण्ड की प्रतीक्षा कर रहे थे तो मित्रों ने भाग निकलने का परामर्श दिया और इसके लिये उपयुक्त अवसर भी ढूंढ निकाला परन्तु सुकरात थे, इसलिये उन्होंने जेल से भागने से इन्कार कर दिया।

सद्गुणों एवं सदाचार की जो झलक सुकरात के अन्तिम कथन में, मिलती है, अन्यत्र दुर्लभ है। उन्होंने न्यायाधीशों को धिक्कारते हुये चेतावनी दी और कहा, क्या तुम्हें अपनी वैभव-प्रियता और मान

सम्मान पाने की लालसा पर लज्जा नहीं आती जबकि तुम्हें सत्य मार्ग पर चलकर और ज्ञान प्राप्त करके अपनी आत्मा को पवित्र बनाने की तनिक भी चिन्ता नहीं है।" मृत्यु का भय उस महात्मा के लिये उतना ही निरर्थक था जितना कि गरुड़ को भयंकर सर्प का। मृत्यु के विषय में उनका विचार था कि मृत्यु का भय मनुष्य के लिये इससे अधिक कुछ भी नहीं है कि कल्पना-शक्ति के सहारे एक व्यक्ति यह समझ लेता है कि वह विद्वान् है जबकि सचमुच में मूर्ख है। "मृत्यु के विषय में कुछ न जानते हुये भी उससे भयभीत रहना उतना ही अहितकर है जितना कि कुछ भी न जानते हुये अपने को ज्ञानी समझना। मुझे यह ज्ञात नहीं है कि मृत्यु क्या है। यह एक अच्छी वस्तु भी हो सकती है। मैं उससे नहीं डरता हूँ क्योंकि जो बुरा है उसकी अपेक्षा जो अच्छा हो सकता है उसे ही मैं पसन्द करूंगा। कौन जानता है कि मृत्यु को परमात्मा ने मेरे कल्याण के लिये भेजा हो। मैं सहृदय उसका स्वागत करता हूँ।"

सुकरात की वाणी में श्रोताओं को आत्म-विभोर करने की विलक्षण शक्ति थी वह अपराधी इसलिये थे कि अपना समय प्रकृति के गूढ़तम रहस्यों का उद्‌घाटन करने में व्यतीत किया करते थे तथा जन-साधारण की दृष्टि में जो बात बुरी थी उसको तर्क-शक्ति द्वारा अच्छा बताते थे और इतना ही नहीं अन्य व्यक्तियों से भी ऐसा ही करने को कहते थे। अपने ऊपर आरोपों का उत्तर देने के लिये जब सुकरात न्यायाधीशों के सम्मुख उपस्थित हुये तो एथेन्स के निवासियों ने आपस में इस प्रकार के शब्द कहे थे कि "किसी समय उसकी आवाज में वह जादू था कि एलसीबियेड्स ने कहा था कि वह बिना बाँसुरी के ही श्रोताओं को उसी प्रकार मोहित कर लेता था जिस प्रकार वंशी की सुमधुर ध्वनि सुन कर लोग आनन्द विभोर होकर आत्म-विस्मरण कर जाते हैं। अब उम्र ढल रही है और सत्तर वर्ष से भी अधिक हो चुकी

है अतः अब इनकी वाणी में पहिले जैसा जादू नहीं रह गया है ।"

सुकरात के जीवन की एक बड़ी प्रसिद्ध घटना है जिसका जिक्र उसके योग्य शिष्य अफलातून (Plato) ने इन्ट्रोडक्सन टू प्लेटोस एपोलाजी एण्ड क्रिटो (**Introduction to Plato's Apology and crito**) में किया है । जब एथेन्स और कोरिन्थ (Corinth) के बीच युद्ध हो रहा था सुकरात उन दिनों फौज में ही काम करते थे । वहाँ भी अपने साथियों और सिपाहियों को आश्चर्यान्वित किया करते थे क्योंकि कठिन शीत-काल में भी वह बहुत कम कपड़े पहिनते थे तथा शराब तो उन्होंने कभी हाथ से छुई तक न थी । एक प्रातः किसी गम्भीर विचार-धारा में वह उलझ गये । जितना ही अधिक सुलझाने का प्रयत्न करते, उतनी ही विषमता से गुत्थी उलझती जा रही थी । दोपहर हो गई परन्तु वह अपने स्थान पर तथावत् बने रहे । उनके साथियों में इस बात की चर्चा फैली कि सुकरात किसी विचार-धारा में मग्न ज्यों के त्यों खड़े है । दोपहर के पश्चात् संध्या आई और फिर आई जगत्-विश्राम दायिनी रात्रि । भोजन का समय हुआ परन्तु सुकरात ज्यों के त्यों बने रहे । इनकी रक्षार्थ सिपाही अपनी अपनी चटाइयाँ आदि बिछाकर इनके चारों ओर सो गये । सभी सिपाही उत्सुक थे यह देखने के लिये कि किस प्रकार यह समाधि भंग होती है । रात भर जैसे के तैसे खड़े रहने के पश्चात् प्रातः सूर्य की वन्दना कर वह अपने काम पर चले गये ।

अन्त में वह समय आ ही गया जब शोकाकुल जेलर विष का प्याला लाया उन्होंने असीम शान्ति के साथ उस हलाहल को कण्ठ के नीचे उतार लिया । खाली प्याला देखकर मित्रों ने करुण क्रन्दन किया जनता में हाहाकार मच गया । सुकरात ने उन सबों को समझाकर कहा "तुम्हारा इस प्रकार रोना-चिल्लाना मेरी मौत को एक पल के लिए

भी न रोक सकेगा। मनुष्य को शान्ति पूर्वक मरना चाहिये। अतः धैर्य धारण करो। वह तब तक चलते रहे जब तक उनमें तनिक भी शक्ति रही विष का पूर्ण प्रभाव व्याप्त हो जाने पर वे लेट गये तथा इस असार संसार से सदा के लिये विदा हो गये।

"जो व्यक्ति न जानते हुए यह जानता है कि वह सदैव अज्ञान के गहरे गर्त में पड़ा रहेगा तथा उसका उद्धार असम्भव है।" सद्गुणों के महान प्रतिपादक महात्मा सुकरात का यह कथन युग-युगान्तरों तक मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

मानव स्वातंत्र्य का समर्थक—

अब्राहम लिंकन

विश्व के महापुरुषों में उसी की गणना होती है जो व्यष्टि से समष्टि की ओर, सकुचित से विशाल की ओर तथा स्वार्थ से परार्थ की ओर उन्मुख होता है। महापुरुषों में कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। त्याग तपस्या, संयम और दृढ़ संकल्प आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो व्यक्ति को सामान्य से असाधारण की कोटि में जा बिठलाती है। त्याग के लिये आसन्न सुख का मोह छोड़ना पड़ता है, पुत्र कलत्र एवं कुटुम्बियों की सुख सुविधाओं को कठिनाइयों के गर्त में ढकेल कर असफल गृहस्थ का सा अपमान सहन करना पड़ता है; तपस्या कष्टसहिष्णुता, अध्यवसाय एवं लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ने की सीढ़ी है जिस में वर्त्तमान को भुलाकर भविष्य की महानता पर दृष्टि रखनी पड़ती है; संयम ऐहिक सुखों की अपरिमितता एवं जीवन की अनियमितता पर अंकुश लगता है एवं दृढ़ संकल्प लक्ष्य के मार्ग के साम, दाम, दंड भेद आदि कठिनाइयों से भयभीत न होकर निरंतर आगे की ओर बढ़ने में सहायक होता है। अमेरिका का राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन इन्हीं गुणों और विशेषताओं के आधार पर एक अत्यन्त सामान्य स्थिति के व्यक्ति से राष्ट्र का सब से बड़ा व्यक्ति बन सका, जिसके कारण अमेरिका में दास-प्रथा का उन्मूलन संभव हो सका।

प्रारंभिक जीवन की समस्याएँ

उत्तरी अमेरिका में केण्ट नामक राज्य में टामस लिंकन नामक एक निर्धन व्यक्ति एक छोटे से गाँव में अपनी पतिपरायणा पत्नी के साथ रहता था। सन् १८०९ के फरवरी मास में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो आगे चल कर अमेरिका के एक महान् राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लिंकन अपने माता-पिता की तीन सन्तानों में से मझला था। निर्धनता के अंचल में इस बालक ने और कष्ट तो उठाये ही, जैसे कि इस प्रकार के सभी बालकों को उठाने पड़ते हैं किन्तु इसके अतिरिक्त उसने ऐसे दैविक कष्ट भी उठाये जिससे बालक प्राय: असहाय और निराश हो जाते हैं। लिंकन का पिता केंट प्रान्त में अत्यन्त निर्धनता से जीवन यापन करता था। अपनी पत्नी और बच्चों का उदर पोषण भी वह नहीं कर पा रहा था, अतः उसने एक अन्य प्रान्त में जाकर बसने का निश्चय किया। तदनुसार ओहियो नदी के जल मार्ग से अपने बनाये हुए डोंगे में अपनी छोटी सी गृहस्थी और स्त्री-बच्चों के साथ वह इंडियाना की ओर चल दिया। उस समय अब्राहम की आयु ७ वर्ष से अधिक नहीं थी। मार्ग में एक स्थान पर डोंगा लहरों की लपेट में आ गया किन्तु ईश्वर कृपा से यह निर्धन परिवार डूबते-डूबते बच गया।

मातृ वियोग से विपत्ति में वृद्धि

इंडियाना में लिंकन परिवार किसी प्रकार पहुँचकर बस गया। उन्हें अपने रहने की झोपड़ी भी अपने हाथों से ही बनानी पड़ी। बिचारा छोटासा बालक अब्राहम अपनी छोटीसी कुल्हाड़ी से लकड़ी काटने में अपने निराश और परिश्रमी पिता का हाथ बटाता। माता-पिता जब कभी पसीने में लथ पथ अपने प्यारे पुत्र को लकड़ी काटने के प्रयत्न में संलग्न देखते तो करुणा और दुर्भाग्य की निर्ममता से उनके आँखों में आँसू आ जाते।

लिंकन दम्पति बड़े धार्मिक थे। इसीलिये सांसारिक कष्टों को वे प्रसन्नता से सहन करते रहते थे। वैभव की महत्वाकांक्षा की अपेक्षा ईश्वर परायणता और संतोष ही उनका संबल था। सच्चाई, ईमानदारी और परदुःख कातरता से उनका हृदय मानव के प्रति सहानुभूति पूर्ण रहता था। बचपन में इन्हीं गुणों का अलक्षित प्रभाव अब्राहम पर पड़ता रहा और उसके हृदय में दया एवं साहसिकता का संचार एक साथ हुआ। लिंकन परिवार को इस नये प्रदेश में आये अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था। कठोर परिश्रम से अब्राहम की माता का स्वास्थ्य गिरने लगा और उसे क्षय होगया। एक निर्धन परिवार के प्रयत्न क्षय के पिशाच से कहाँ तक लड़ सकते थे! अन्त में एक दिन वह धर्मात्मा माता इस लोक से चल बसी। पति टामस लिंकन कटे वृक्ष की भाँति असहाय और एकाकी होगया। बच्चे मातृवियोग में अत्यन्त दुःखी और क्षीण होगए, किन्तु लिंकन के धैर्य का बांध नहीं टूटा। यद्यपि वह निकटवर्ती वृक्ष के नीचे चिरनिद्रा में सोई हुए अपनी मां की कब्र पर घटों आँसू बहाता तथापि इससे उसकी कर्तव्य निष्ठा और भी सचेत हुई। वह पढ़ने-लिखने में अधिक मन लगा कर मातृ वियोग का दुःख भूलने की चेष्ठा करने लगा। बाइबिल, पिलग्रिम्स प्रोग्रेस, वाशिंगटन की जीवनी, ईसप की कहानियाँ उसने अपने गाँव की शाला से ला-ला कर बड़े चाव से पढ़ीं और उसमें एक महान् नागरिक के गुणों का अंकुर पनपने लगा।

सत्यनिष्ठा और सदाचार की नींव

जहाँ आकर लिंकन परिवार बसा था, धीरे-धीरे वहाँ अन्य लोग भी आकर बसने लगे, और वह ग्राम निर्धनों की एक अच्छी बस्ती बन गई उसके पड़ौसी शराबी स्वार्थी और लड़ाकू प्रवृत्ति के थे। संगति का दुर्गुण बालक में भी आया और वह शराब पीने लगा। एक बार माता ने अपने प्यारे बच्चे को शराब पीते देखा तो उसने

तत्काल इस दानव के दुर्गुणों से उसे परिचित कराया और भविष्य के लिये उसे सचेत कर दिया। ईश्वर की दया से माता के वचनों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि अब्राहम ने फिर शराब का स्पर्श भी नहीं किया। सत्य का गृहण और वचन पालन अब्राहम का स्वभाव बन गया।

बालक अपराध बन पड़ने पर प्रायः झूठ बोलकर सहज में ही उसके परिणाम से मुक्त रहने का मार्ग निकाल लेते हैं किन्तु अब्राहम के शाला जीवन की एक दो घटनाएँ ही ऐसी थीं जिससे उसकी सत्यप्रियता और निर्भीकता का प्रमाण मिल जाता है। एकबार अब्राहम अपने अध्यापक से एक पुस्तक पढ़ने के लिए माँगकर लाया। रात को पढ़ते-पढ़ते उसे नींद आने लगी और उसने पुस्तक एक खिड़की में रखदी। वर्षा के दिन थे; रात को पुस्तक खिड़की में पड़ी रहने से भीग गई। प्रातःकाल जब बालक ने देखा कि इस पुस्तक को लेकर वह अध्यापक को अपना मुंह कैसे दिखायगा, तब वह वीरोचित दृढ़ता के साथ उसका मूल्य अपने श्रमदान से चुकाने के लिए कृतसंकल्प होकर पाठशाला गया और अपने अध्यापक से उसने अपनी भूल का वर्णन कर दिया; साथ ही उसने यह भी कहा कि उस पुस्तक के मूल्य के समान श्रमदान करने के लिए वह तैयार है। अध्यापक ने उसे खेत का घास काटने के लिए कहा अतः निरंतर तीन दिन के प्रयत्न से उसने खेत काट कर अपनी असावधानी का प्रायश्चित किया। निश्चय ही पुस्तक के मूल्य से उस परिश्रम का मूल्य कहीं अधिक था। पर उसे इससे खेद के स्थान पर प्रसन्नता ही हुई।

एक और ऐसी ही घटना हुई। पाठशाला में दीवार पर शोभा के लिए बारहसिंगे का एक सींग टंगा था। बालक अब्राहम कौतूहलवश उस पर लटक कर झूलने लगा। संयोग से सींग टूट गया जब अध्यापक ने कक्षा के छात्रों से सींग तोडने वाले के विषय में पूछताछ की तो

अब्राहम ने आगे बढ़ कर अपना अपराध तत्काल स्वीकार कर लिया। अध्यापक ने पूछा कि तुमने यह सींग क्यों तोड़ा ? तो उसने उत्तर दिया कि मैं सींग से लटक रहा था कि वह टूट गया। मुझे नहीं ज्ञात था कि वह इतना निर्बल है कि टूट जायगा। बालक की इस सत्य निष्ठा और निर्भीकता से अध्यापक को बड़ी प्रसन्नता हुई।

बालक सद्गुणों और जनसेवा के पथ पर अग्रसर होने लगा। वह पड़ोसियों के पत्र उन्हें पढ़कर सुनाता और उनके उत्तर भी धैर्य के साथ सुन्दर अक्षरों में लिख कर उनकी सहायता करता। इन गुणों से बालक अपने गाँव में बहुत प्रिय और जन-सेवी समझा जाने लगा।

दृढ़ता पूर्वक परोपकार की एक घटना अत्यंत प्रभावोत्पादक है। अब्राहम एक बार अपने साथियों के साथ घूम कर घर की ओर लौट रहा था। मार्ग में उसे एक ऐसा घोड़ा भटकता दिखाई दिया जिस पर लगाम जीन-काठी आदि कसे कसाये थे किन्तु सवार का कहीं पता नहीं था। अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि अश्वारोही शराब में उन्मत्त होने के कारण कहीं गिर पड़ा होगा। कौतूहल जागृत हुआ और सब साथी उसकी खोज में तल्लीन हो गए। अन्त में अश्व का मालिक अचेतन अवस्था में मार्ग के एक ओर पड़ा दिखाई दिया। अब्राहम ने उसके जीवन का मोल समझा और उसे गाँव ले ले चलने का प्रस्ताव किया; किन्तु उसके अल्हड़ एवं अनुत्तरदायित्व पूर्ण मनोवृत्ति के साथी इस पर सहमत न हुए। वे अब्राहम को एकाकी छोड़ कर अपने-अपने घर को चल दिए। किन्तु मानवता का वह पुजारी वहाँ से न हटा। उसने उस अचेत व्यक्ति को होश में लाने के अनेक प्रयत्न किये किन्तु सफलता न मिली तब हारकर उसने उसे अपनी पीठ पर लादा और गाँव की ओर चला। घर आकर उसने उसका उपचार किया और रातभर अपने यहाँ रखकर प्रातःकाल उसे विदा किया। परोपकार के लिए दृढ़ता और साहसिकता का इससे अच्छा उदाहरण सुलभ नहीं।

वास्तव में लोक सेवा के लिये दृढ़ एवं स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। अब्राहम ने अपना शरीर वैसा ही सबल और निरोग बनाया था। इसीलिए वह दिन भर घर-बाहर और गाँव वालों का कठिन से कठिन शारीरिक और बौद्धिक कार्य भी बिना पारिश्रमिक लिए सदा प्रसन्नता से करता रहता था।

स्वावलंबन का श्री गणेश

अब अब्राहम समझदार होने लगा था। उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। उसकी सौतेली माँ को प्रसन्न करने के लिए भी उसे आज्ञापालन, सौजन्य और कर्तव्य शीलता का निरंतर ध्यान रखना पड़ता था। इन सब कामों से छुट्टी पाकर उसे आगे बढ़ने के लिए प्रायः आधी-आधी रात तक अध्ययन भी करना पड़ता था। उसके इन गुणों से उसकी सौतेली माँ भी अत्यंत प्रभावित हुई और उसे माता का प्यार पुनः प्राप्त होगया।

अब उसने एक ठेकेदार के यहाँ नौकरी करली। ठेकेदार का कार्य नदी के मार्ग से डोंगे द्वारा व्यापारियों का माल बाजारों तक लाना-लेजाना था। इस कार्य में अब्राहम सदृश नौकर को पाकर ठेकेदार निश्चिंत होगया। न कभी माल घटने की शिकायत हुई और न समय पर न पहुँचने की। वह हाथ का भी बड़ा सच्चा था। किसी का एक पैसा उसने छल से कभी नहीं लिया। एक बार एक पड़ौसी का माल पास के बाजार में बेचने के लिए उसे भेजा गया। साथ में रुपये लाने के लिए विक्रेता का पुत्र भी था। कारण वश उन्हें मार्ग में ही रात होगई और वे डोंगा नदी तट पर बाँधकर उसी में सो गए। रात्रि में 'रेड इंडियन' नामक आदिवासी तस्करों ने उसे घेर लिया। वह बड़े साहस के साथ अपना भाला लेकर उन पर टूट पड़ा और उन्हें दूर तक खदेड़कर ही साँस ली। प्रातःकाल डोंगे का सब माल बाजार में बेच

कर वह घर लौटा और बिक्री का सारा रुपया संबन्धित व्यक्ति को सौंप दिया।

पुनः गृह परित्याग

इंडियाना में रहते हुए लिंकन परिवार को कई वर्ष व्यतीत होगये किन्तु उनकी आर्थिक दशा नहीं सुधरी; साथ ही वहाँ का जलवायु भी उन्हें अनुकूल न जान पड़ा। अतः उन्होंने इंडियाना छोड़कर अन्य स्थान पर जाने का विचार किया। वे बड़ी कठिनाई से दुर्गम मार्ग पार करके इलिनाइस प्रान्त में जाकर बसे, जंगल काट कर घर बनाया परन्तु वहाँ का जलवायु भी अनुकूल नहीं था अतः विवश होकर लिंकन परिवार कोल्स नामक प्रांत में जाकर बसाया। वहाँ उस की सत्यनिष्ठा की ख्याति डैंटन ओफट नामक व्यापारी ने सुनी और उसे स्प्रिंगफील्ड में चल कर बसने के लिए प्रोत्साहित किया, अतएव अब्राहम अपने परिवार के साथ न्यूसालेम नामक नगर में पहुंचा जहां कि डेंटन का बहुत बड़ा व्यापार चल रहा था। अब्राहम को सारा कारोबार समझाकर उसका उत्तरदायित्व सौंप दिया गया। शीघ्र ही अब्राहम ने अपने परिश्रम, ईमानदारी और अध्यवसाय से मालिक का व्यापार चमका दिया, पर व्यापार में अब्राहम ने शोषण और बेइमानी का सहारा कभी नहीं लिया। एकबार एक स्त्री ने कुछ सौदा लिया। हिसाब की भूल से उस स्त्री ने अब्राहम को कुछ अधिक दाम दे दिए। जब रात को हिसाब मिलाया गया तो अब्राहम को भूल ज्ञात हुई। अब्राहम को चैन नहीं पड़ा और वह रात को अंधेरे में पांच मील चलकर उस स्त्री के रुपये लौटाने पहुँचा। डेंटन के व्यापार का सर्वेसर्वा हो जाने पर भी उसमें अभिमान लेश मात्र को न था।

सार्वजनिक जीवन की ओर

यूरोप निवासी जब से अमेरिका में जाकर बसे तभी से वहाँ के

आदिवासियों ने इनको घृणा की दृष्टि से देखना प्रारंभ किया। वे विशिष्ट स्थानों के जंगलों म छिपिटकर सामूहिक जीवन व्यतीत करने लगे। जब कभी नवागंतुक उनके पंजे में आजाते, वे उनके प्राण लिये बिना नहीं छोड़ते। ऐसी अवस्था में अमेरिकनों का संघर्ष मूल निवासियों से प्राय: होता ही रहता था। मूल निवासी दास कहलाते थे और उनका क्रय विक्रय होता रहता था। सन् १८३२ में उनके एक सरदार ब्लेकहाक ने मिसीसिपी नदी पार करके आक्रमण कर दिया। यूरोपियनों ने भी युद्ध की तैयारी की और एटकिंसन तथा रेनाल्ड्स् के नेतृत्व में युद्ध प्रारंभ होगया। इसी संबंध में अनेक सैनिकों की आवश्यकता हुई और अब्राहम ने अपने आपको सैनिक सेवा के लिए प्रस्तुत किया। तत्कालीन प्रथानुसार नव प्रविष्ट सैनिकों को अपने केप्टिन का चुनाव स्वयं ही करना पड़ता था। अब्राहम का प्रतिद्वंदी एक व्यक्ति और था जिसे अपने चुने जाने की बड़ी आशा थी। समय पर सब सैनिक एकत्र हुए और उनसे कहा गया कि जो व्यक्ति जिस केप्टिन के नियंत्रण में कार्य करना चाहे वह उसके निकट जाकर खड़ा हो जाय। अब्राहम यह देख कर आश्चर्य चकित हो गया कि उस दल के ६० प्रतिशत व्यक्ति इसको घेर कर खड़े होगए और इस प्रकार अपने नेता का चुनाव कर लिया। अब्राहम लिंकन ने इस चुनाव के विषय में बड़े विनोद से लिखा है कि मैंने इतने चुनावों में भाग लिया किन्तु इतना अधिक आनंद मुझे किसी चुनाव में नहीं आया।

लोक-प्रियता का परीक्षण

युद्ध समाप्त होने पर अब्राहम फिर बेकार हो गया। इसी समय कांग्रेस का चुनाव निकट था। अब्राहम ने अपनी लोक-प्रियता का प्रथम राजनीतिक परीक्षण करना चाहा। अपने क्षेत्र में वह विजयी घोषित हुआ। उसे विपक्षी से २७७ मत अधिक प्राप्त हुए। किन्तु वह अन्तर प्रान्तीय चुनाव में विजयी न हो सका। इसका कारण उसकी

एक क्षेत्रीय सभा ही थी। इस समय भी अब्राहम का अध्ययन चल रहा था। उदर पोषण के लिये अब उसे पोस्ट मास्टर बनना पड़ा। वहाँ भी उसने बड़ी ईमानदारी से कार्य किया। यहाँ उसे समाचार पत्र पढ़ने के लिये सुगमता से मिल जाया करते थे।

अभिभाषक के रूप में:—

सन् १८३७ में अब्राहम ने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की इस समय वह धारा सभा का सदस्य चुना गया। साथ की वकालत का काम भी चलने लगा। योग्य और तर्क बुद्धि होने पर भी अब्राहम की वकालत चमक न सकी। वह झूठे मुकदमे लेता ही नहीं था। और यदि बीच में उसे ज्ञात हुआ कि अमुक मुकदमा झूठा है तो वह उसकी पैरवी करना तत्काल छोड़ देता था। वह झूठी बात का प्राप्त धन भी नहीं लेता था या लौटा देता था।

सन् १८४२ में उसके निजी जीवन ने एक महत्वपूर्ण मोड़ लिया। मैरी टाड नाम की एक सुशीला लड़की से उसने विवाह किया और गृहस्थ जीवन की सुख शान्ति पूर्ण अमराई में पदार्पण किया। पत्नी भी उसे अपने अनुकूल ही मिली। अब चुनावों में उसे जनमत का बल बहुमत से प्राप्त होने लगा था। उसने कांग्रेस में प्रवेश किया। यहाँ एक प्रति-पक्षी से उसे टक्कर लेनी पड़ी। वह था स्टीफन ए. डगलस। वह बुद्धिमान और प्रखर वक्ता था।

दासत्व प्रथा का अन्त जीवन का लक्ष्य:—

डगलस दासत्व प्रथा का समर्थक था। उत्तरी-क्षेत्र की जनता अब्राहम लिंकन से प्रभावित थी और ये लोग इस अमानवीय प्रथा को समाप्त करने पर तुले हुए थे। बहुमत के कारण लिंकन सदा चुनावों में विजयी हो जाता था किन्तु उसके इस प्रस्ताव को मानने के लिये



दक्षिण के लोग तैयार नहीं थे। लिंकन अपनी पत्नी की प्रेरणा से राजनीतिक जीवन में सफलता के लिये निरंतर प्रयत्नशील होता रहा। यदि उसकी पत्नी उसे प्रेरित नहीं करती होती तो वह राष्ट्रपति पद के लिए चुनाव के झंझट में कभी नहीं पड़ता। अब्राहम १६४६ में कांग्रेस का सदस्य चुना गया और १६४७ में उसे वाशिंगटन जाना पड़ा। उन्होंने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में कोलंबिया से दासप्रथा समाप्त करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत किया किन्तु विरोध के कारण वह पारित न किया जा सका। अगली बार अब्राहम विजयी न हो सका। इस अवधि में लिंकन ने वकालत पर अधिक ध्यान दिया। इससे उसकी ख्याति में अत्यधिक वृद्धि हुई।

सन् १८५४ में कारण वश उन्होंने फिर अपने लक्ष्य विषय को हाथ में लिया। इन्होंने कहा 'आधा स्वतंत्र और आधा दास रहकर यह देश कभी जीवित नहीं रह सकता'। उनके पक्ष ने पुनः जोर मारा और वह अब की बार विजयी हुए। किन्तु त्याग-पत्र देकर उन्होंने सीनेट का चुनाव लड़ा किन्तु सफलता प्राप्त नहीं हुई, इसके पश्चात् संघर्ष की तीव्रता बढ़ती गई। डेमोक्रेट तथा रिपब्लिकन दलों में टक्करें होती रहीं परन्तु डगलस का बल न घटा। १८५८ के चुनाव में डगलस फिर जीता और लिंकन की हार हो गई। १८५८ में स्थापित रिपब्लिकन दल शनैः शनैः बलवान होने लगा। सन् १८६० में वह अपने दल की ओर से राष्ट्रपति पद के लिए खड़े किये गए। यह सब उनसे बिना पूर्व स्वीकृति के किया गया। इस शुभ संवाद को लेकर जब तार वाहक लिंकन के निकट पहुँचा तब वह गेंद खेलने में निमग्न थे। तार उनके हाथ में दिया गया। उसे पढ़ कर उन्होंने उसे तार-वाहक से कहा सड़क नम्बर आठ में जो नाटी महिला रहती है उसे इस संवाद से प्रसन्नता होगी। यह तार केवल वे अपनी पत्नी को सुनाने के लिए घर गए। चुनाव का आन्दोलन विशाल पैमाने पर हुआ। डेमोक्रेट दल

ने रिपब्लिकन पर प्रत्येक प्रकार की शब्दावली के नाश चलाए। लिंकन का सद्गुण सम्पन्न सिद्ध करने के लिए निम्न से निम्न कोटि की चालें चली गई किन्तु वे लिंकन को न डिगा सके। लिंकन विजयी हुए। परिणाम यह हुआ कि दक्षिण के राज्य अमेरिकन राष्ट्रसंघ से पृथक् होने की चेष्टा करने लगे। छोटे-मोटे सघर्षों ने युद्ध का स्वरूप ले लिया और दक्षिणी कारोलिना ने एक शासकीय जलयान पर गोले बरसा दिए। सन् १८६१ के फरवरी मास में अब्राहम लिंकन वाशिंगटन गए। अगले मास राष्ट्रपति का पद ग्रहण समारोह बड़ी धूम-धाम से सम्पन्न हुआ। उस समय पराजित हो जाने पर भी दक्षिण वालों का अहंभाव नष्ट नहीं हुआ था। वे लिंकन को सत्तारूढ़ देखना ही नहीं चाहते थे। उत्सव में लिंकन के जाने के समय अनेक समझदार व्यक्तियों ने आशंका प्रकट की थी कि इस समय तक प्रतिशोध की अग्नि बुझी नहीं है और संभव है कि राष्ट्रपति की हत्या कर दी जाय। किन्तु लिंकन ईश्वर के भरोसे निर्भय और अडिग रहे। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि संघ की एकता बनाये रखने के लिए प्रत्येक उपाय से काम लिया जायगा। अप्रैल में केरोलीनिओं के लोगों के सम्टर दुर्ग पर तोपों द्वारा गोले बरसाये। गृह युद्ध की आग फिर तीव्र वेग से धधक उठी लिंकन दमन और आतंक का मार्ग अपनाने की अपेक्षा सद्भावना और शान्ति से काम निकालना चाहते थे। दक्षिण के सात राज्य अत्यधिक विरोध कर रहे थे और उन्होंने सैनिक बल का प्रयोग करके गृह युद्ध का गर्हित स्वरूप उपस्थित कर दिया था। जब युद्ध अनिवार्य हो गया तब लिंकन ने उत्तर वालों से युद्ध में भाग लेने की प्रार्थना की। फिर क्या था, बात की बात में ७५ सहस्र सैनिक रणस्थल में जाने के लिए कटिबद्ध हो गए।

डगलस का हृदय परिवर्तन

अब्राहम के सौम्य नेतृत्व से उनका प्रतिद्वंदी डगलस प्रभावित

हुए बिना न रहा और उसने लिंकन से मैत्री स्थापित करली। किन्तु उत्तर-दक्षिण की विचार धारा में दासत्व प्रथा को लेकर वैमनस्य बना ही रहा। युद्ध हुआ और अब्राहम लिंकन का समर्थक दल पराजित हो गया। इससे युद्ध का अंत संभव नहीं था। एक बार पुनः दोनों ओर से विशाल रूप से युद्ध की तैयारियाँ की गईं। इस प्रकार लगभग साढ़े छः लाख सैनिक भीषण रण ताण्डव के लिए तैयारियाँ करने लगे।

दास प्रथा की मुक्ति की घोषणा:—

युद्ध इस ओर अपनी तीव्रता के साथन जुटा रहा था। और दूसरी ओर अधिक प्रतीक्षा न करते हुए लिंकन ने सन् १८६० में दासत्व प्रथा की समाप्ति की विधिवत् घोषणा करदी। सर्वत्र ये शब्द मानवता के वायु मंडल में गूंज गए—

"आज से सब संस्थाओं के गुलाम मुक्त हो गए। उन पर मालिकों की कुछ भी प्रभुता न रहेगी और वे अन्य लोगों की भांति ही स्वतंत्र रहेंगे। जो व्यक्ति उनकी स्वतंत्रता में बाधा डालेगा वह शासन का शत्रु गिना जायगा और नियमानुसार उसे दण्ड दिया जायगा।"

इस घोषणा से अमेरिका में शताब्दियों से प्रचलित गुलामी की प्रथा का अन्त होगया। फलस्वरूप ४० लाख दास अपनी बन्धन शृंखलाओं से मुक्त होगए। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रति-क्रिया के फल स्वरूप युद्ध की तीव्रता और भी बढ़ गई। किन्तु विद्रोहियों को एक बड़ी भारी हानि हुई। वह यह कि उन्हें गुलामों से मिलने वाली अपरिमित सहायता बंद होगई। यही नहीं अपितु दास लोगों ने अपने मुक्ति-दाता लिंकन का पक्ष लेकर दक्षिण वालों को कष्ट देना प्रारंभ कर दिया। दक्षिण वालों के पैर अब उखड़ चुके थे वे परास्त होगए और इस प्रकार अब्राहम लिंकन का मानवीय मुक्ति का पवित्र उद्देश्य अमेरिका में सफल हुआ।

लिंकन ने जब अपने अंतिम निवास स्थान से वाशिंगटन की ओर प्रस्थान किया तो वह अपनी माता से विदा लेने पास ही के एक गांव में गया। वहाँ उसकी बहिन भी थी। इस बार माता ने विशेष रूप से पुत्र वियोग का दुःख अनुभव किया और उसकी आँखों में से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। उधर ग्राम निवासियों ने भी विदाई का ऐसा दृश्य उपस्थित किया मानों अब अब्राहम लिंकन लौटकर आने वाला नहीं है। लिंकन ने प्रणाम करके राष्ट्र-पति पद को सुशोभित करने के लिए वाशिंगटन की ओर ज्योंही प्रस्थान किया, उसके विरोधी दलों की हलचलें कुछ भयावह होने लगीं। उसके पक्ष वालों ने अंगरक्षकों और गुप्तचरों आदि की यथेष्ट व्यवस्था की और लिंकन राष्ट्रपति के राज-प्रासाद में पहुँच गया। वहाँ आकर लिंकन ने अपने विरोधियों को भी अपनी अति मानवीय भाषणकला से जीत लिया और किसी पक्ष को असंतुष्ट रहकर प्रत्यक्ष रूप से विरोध करने का कोई कारण नहीं रह गया।

ऊपर से दोनों ओर का विरोध और युद्ध तो समाप्त होगया किन्तु अब्राहम लिंकन के सिद्धान्त और उसकी पद प्रतिष्ठा में वृद्धि का शूल विरोधी दल के हृदय में खटकता रहा। अप्रैल १८६५ को विजय समारोह मनाया गया। विविध सांस्कृतिक आयोजनों के कार्यक्रम विभिन्न स्थानों पर चल रहे थे। लिंकन को सभी स्थानों से साग्रह निमंत्रण आये थे। वह भी बहुत से समारोहों में समयाभाव होते हुए भी उत्साह वर्धन के लिए जाने लगा। एक कार्यक्रम में नाटक का आयोजन किया गया। लिंकन अपने परिवार के साथ उसमें सम्मिलित होने के लिए सहमत हो गया। इधर अभिनय की चरम सीमा पर दर्शक हर्षनाद से तालियाँ बजा रहे थे। उधर एक क्रूर आततायी ने पीछे से लिंकन के मस्तक को लक्ष्य बना कर बंदूक चलायी। निशाना सिर में लगा। चारों ओर कुहराम मच गया। पुलिस की दौड़ धूप भी प्रारंभ होगई किन्तु हत्यारा वहाँ से निकल भागा। चिंताजनक स्थिति

में लिंकन को चिकित्सार्थ ले जाया गया। किंतु सभी प्रयास व्यर्थ हुए। दूसरे दिन उसका स्वर्गवास होगया। सारा अमेरिका इस अमानुषिक काण्ड से शोक मग्न हो गया।

अब्राहम लिंकन का जीवन अमेरिका के लिए ही आदर्श नहीं, संसार के सभी देशों और वर्गों के लिए आदर्श माना गया है। जिस प्रकार महात्मा गाँधी त्याग तपस्या और अहिंसा के सिद्धान्त से विश्व वँद्य हुए उसी प्रकार प्रायः इन्हीं मानवीय सर्वोच्च गुणों के कारण अब्राहम लिंकन के निस्वार्थ जन-सेवा के आदर्श की दिव्य-ज्योति राजनीति के आकाश में भूले भटकों को मार्गदर्शन करती रहेगी।

विश्व कवि—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

विश्व वन्द्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत की भव्य विभूति थे। उन्होंने जगत् विख्यात नोबल पुरस्कार से विभूषित होकर विश्व में भारत का नाम उज्जवल किया। माँ भारती के इस वरद पुत्र ने अपनी अमर वाणी से दिग-दिगंत उद्घोषित कर दिए और संसार ने मुक्त कंठ से इनकी रचनाओं की प्रशंसा की। वस्तुतः भर्तृहरि की निम्न पंक्तियाँ ऐसे ही कविरत्नों के प्रति निवेदित हैं.—

जयन्ति ते सुकृतिनो रस सिद्धः कवीश्वरः।
नास्ति येषां यशः काये जरा मरणजं भयम्॥

आज जब हम विश्व कवि-रवीन्द्र का स्मरण करते हैं तो उनकी दिव्य मूर्ति नेत्रों के समक्ष साकार हो उठती है। हृदय श्रद्धावनत होकर उनका स्तवन करने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उपनिषद् काल का तत्वदर्शी ऋषि आधुनिक काल में अवतरित हो गया हो। अस्तु, आइये अब हम अपने देश की इस महान् विभूति के जीवन और कार्यों पर विचार करें और उनके व्यक्तित्व से अपने अंतर को आलोकित कर लें।

बाल्य जीवन:—

रवीन्द्रनाथ का जन्म मंगलवार ७ मई १८६१ को कलकत्ते में हुआ था। उनके पूर्वज बंगाल में पर्याप्त सम्मानित थे। वे वस्तुत: कन्नो-



विश्व कवि : रवीन्द्रनाथ ट



ावन · ईसामसीह

पाध्याय थे परन्तु तत्कालीन शासकों ने उन्हें ठाकुर की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया था। इस प्रकार उनके पूर्वज 'ठाकुर' कहलाने लगे थे। अंग्रेजों ने इसी ठाकुर शब्द को विकृत करके 'टैगोर' कहना प्रारंभ किया और उनके नाम के साथ ठाकुर के स्थान पर टैगोर शब्द भी व्यवहृत होने लगा।

इनकी माता का नाम शारदा देवी था परन्तु अल्पायु में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। इनका बाल्यकाल पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर की देख-रेख में ही व्यतीत हुआ। वास्तव में अपने पिता से इनको असीम दुलार एवं सच्ची प्रेरणा मिली। पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्म-समाज के प्रसिद्ध नेता थे। आध्यात्मिकता उनके जीवन का अभिन्न अंग थी। ऐसी स्थिति में यह स्वभाविक ही था कि बाल्यकाल से ही रवीन्द्रनाथ में आध्यात्मिकता का स्फुरण हुआ। संपन्न परिवार में नौकर चाकरों के बीच में उनका लालन-पालन हुआ। विद्याध्ययन के लिए उन्हें पाठशाला भेजा गया परन्तु उनका मन इस प्रकार की पढ़ाई में न लगने पर घर पर ही शिक्षा की व्यवस्था हुई। १८७२ ई० में उनका उपनयन संस्कार हुआ। अपनी किशोरावस्था में ही उन्होंने लिखना प्रारंभ कर दिया था। वे कविताएँ नाटक तथा कहानियाँ लिखने लगे और शनैः शनैः उनकी प्रतिभा का विकास होता गया।

साहित्य साधना:—

अंग्रेजी में एक कहावत है। "*Poets are born, not made*" अर्थात् कवि पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्बन्ध में यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। बारह वर्ष की अल्पायु मे ही उन्होंने अपने प्रसिद्ध नाटक 'पृथ्वीराज पराजय' की रचना की। अपनी अलौकिक प्रतिभा के कारण किशोरावस्था में ही इन्हें इनके साथियों में सम्माननीय स्थान प्राप्त हो गया। अपनी मातृ-भाषा के

साहित्य को समृद्ध बनाने के लिये इनके हृदय में अपार लगन थी। वे केवल मौलिक रचनाओं तक ही अपने को सीमित नहीं रखना चाहते थे उन्होंने कई अँग्रेजी नाटकों व रचनाओं का बंगला भाषा में अनुवाद किया। उदाहरण स्वरूप सन् १८७४ मे उन्होंने शेक्सपीयर के प्रसिद्ध नाटक "मैकबेथ' का बंगला में अनुवाद किया। नाटक से श्रीगणेश कर अब इनकी लेखनी धीरे धीरे कविता और कहानी की ओर भी प्रवाहित होने लगी।

शिक्षा-यात्रा:—

विदेश भ्रमण कर वहाँ से ज्ञान प्राप्त करने की इन्हें बड़ी तीव्र इच्छा थी इसी आंकाक्षा के परिणाम स्वरूप वे सन् १८७८ में इंग्लैंड गये और वहाँ सर्व प्रथम ब्राइटन स्कूल नाम की प्रसिद्ध संस्था में इन्होंने प्रवेश किया। स्कूल छोड़ने के अनन्तर वह यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में भर्ती हुए। यद्यपि उन्होंने यहाँ शिक्षा प्राप्ति के लिये पर्याप्त परिश्रम किया तो भी उन्हें इस शिक्षा से संतोष नहीं हुआ अतः वह एक वर्ष पश्चात ही स्वदेश लौट आये। इंग्लैण्ड से वापिस आने पर उनके चित्त में एक विशेष प्रकार की शान्ति का अनुभव हुआ तथा वह और भी अधिक परिमार्जित रूप से अपनी मातृभाषा का साहित्य-कोष भरने लगे। उत्तरोत्तर उनकी कृतियाँ उनकी महान प्रतिभा का परिचय देने लगी, तथा शीघ्र ही बंगाली साहित्य ज्ञाताओं के हृदय में इन्हें एक अपूर्व स्थान प्राप्त होगया।

विवाह तथा अभिनव प्रेरणा:—

सन् १८८३ ई० की ९ वी दिसम्बर को वैदिक नियमों के अनुसार उनका विवाह मृणालिनीदेवी नाम की परम सुशीला कन्या के साथ हुआ। इस विवाह से उन्हें अपने साहित्य क्षेत्र में एक एक नवीन प्रेरणा प्राप्त हुई, पहिले की अपेक्षा अब वह साहित्यिक

कार्यों में अधिक रुचि लेने लगे और अपनी अनुपम साहित्यक योग्यता के कारण वे लोकप्रिय होने लगे। कुछ साहित्य प्रेमी सज्जन उन्हें "बंगाल की शैली" के नाम से संबोधित करने लगे। इसी काल में उनकी सर्वाङ्ग पूर्ण 'मानसी' नाम की रचना प्रकाशित हुई। अपने पुत्र की असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें नगर छोड़कर ग्रामीण शांत वातावरण में रहने की अनुमति दी। पिता की इस अनुमति से प्रेरित होकर वे गंगा तट पर अपनी जमींदारी के स्यालदा नामक ग्राम में जाकर रहने लगे। इस ग्राम की रमणीय प्राकृतिक छटा को देखकर श्री रवीद्रनाथ ठाकुर को दिव्यानन्द की अनुभूति होने लगी, तथा यहीं प्रकृति की गोद में विश्व कवि ने अपने जीवन का सबसे सुखमय समय बिताया। प्राकृतिक दृश्यों को देखकर आनन्दा-तिरेक से उनके हृदय में एक गुदगुदी सी छा जाती थी तथा कभी-कभी तो वह आनन्द विभोर होकर अपने विशाल नेत्रों से प्रेमाश्रु टपकाने लगते थे। इस अद्वितीय प्राकृतिक प्रेम के कारण वह कभी कभी मीलों तक गंगाजी के पावन जल में नौका विहार करते थे, तथा कभी-कभी भागीरथी के उस पार रेतीले मैदान में अकेले ही बैठकर प्रकृति से अपने हृदय का सम्बन्ध स्थापित करने मे तल्लीन हो जाते थे। इसी पवित्र भागीरथी तट के रेतीले एवं जल शून्य स्थान पर उन्होंने अन्य बहुत सी सुन्दर रचनाएँ कीं, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे इस एकांतप्रियता एवं कल्पना के लोक में ही विचरण करते रहे हों। उन्होंने अपने गाँव की ओर उदासीन दृष्टि कोण नहीं अपनाया। ग्राम की वास्तविक परिस्थिति का अध्ययन कर अपनी जमींदारी का उत्तम प्रबन्ध किया। इस समय अपने मनोनुकूल प्राकृतिक दृश्यों के बीच में होने के कारण उनके हृदय में अपार आनन्द था। विस्तृत एवं शस्य-श्यामल वसुन्धरा, मनोरम जलप्रपात एवं पक्षियों का कलरव उनको बहुत आकर्षित करते थे। इस पर्याप्त शांति के समय ने ही उन्हें प्रकृति से तादात्म्य स्थापित करने का सुअवसर प्रदान किया था।

रचनाएं —

इस ग्राम्य निवास काल में उन्होंने निरन्तर एक से एक अच्छी कहानियाँ, निबन्ध और कविताएँ ही नहीं लिखी अपितु अच्छे नाटक भी लिखे। उनके द्वारा निर्मित 'बलिदान' बंगला साहित्य का सर्व श्रेष्ठ नाटक है। इसी प्रकार 'चित्रांगदा' भी अपने ढंग की एक अद्वितीय कृति है। उनकी प्रतिभा उनके गीति काव्यों में चरम विकास को प्राप्त होगई उनके रहस्यवादी विचारों का पूर्ण विकास उनके 'सोनारतरी' नामक काव्य-संग्रह में स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है। भारत ही नहीं संसार भर के साहित्य में सौंदर्य-पूजा की दृष्टि से विश्व कवि कृत 'चित्रा' और उर्वशी' का स्थान बेजोड़ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने मां भारती को प्रसन्न करने के लिये विविध भाव-प्रसून समर्पित करके विश्व साहित्य को समृद्ध कर भारत का मस्तक विश्व के सम्मुख उन्नत किया।

रवीन्द्रनाथ की कृतियों में 'गोरा' उपन्यास और 'गीतांजली' नामक काव्य ग्रंथ का स्थान बहुत ऊंचा है। 'गीतांजली' पर ही तो आपको विश्व का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'नोबल पुरस्कार' मिला था। 'नोबल पुरस्कार' पाने वाले आप सर्व प्रथम भारतीय थे। 'गीतांजली' का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है। 'गीतांजली' के अतिरिक्त आपकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ ये हैं:—साधना, डाकघर, गोरा, घर-बाहर, मेरा बचपन आदि।

देश-प्रेम की भावना:—

रवीन्द्रनाथ का हृदय देश-प्रेम से ओत प्रोत था। वह विदेशी लोगों द्वारा भारतीय शोषण के घोर विरोधी थे। देशभक्ति उनका व्यसन नहीं किन्तु स्वभाव था। उस समय देश में दो प्रकार की विचार धारा वाले लोग थे। एक तो वे जो अपने राजकर्ताओं के

अनुकरण में ही भारत का कल्याण समझते थे दूसरे वे जो स्वयं को संस्कृति के सर्वोच्च शिखर पर आसीन समझकर सर्वदा अंग्रेजों को गालियाँ ही देते रहते थे। रवीन्द्रनाथ का मार्ग इन सबसे निराला था वे लोगों से कहते थे कि अपना जीवन शुद्ध और समृद्ध करो। तपस्या से शक्ति स्वतः बढ़ने लगेगी, फिर किसी की शक्ति नहीं जो भारत का अपमान करे। वह चाहते थे कि भारत के प्राचीन आदर्श जाग्रत कर पुनरुज्जीवित किये जाँए। उन्होंने स्थान स्थान पर वैदिक सभ्यता एवम् उपनिषदों पर सारगर्भित व्याख्यान दिये तथा सिक्खों, मराठों एवं राजपूतों की वीरता एवं आत्म-विश्वास की भूरि-भूरि सराहना की।

गार्हस्थ्य तथा कटु अनुभव:—

कवि शिरोमणि रविन्द्रनाथ ठाकुर का गार्हस्थ्य जीवन बड़ा आनन्द मय था, उन्हें अपनी धर्मपत्नी से विद्यालय के संगठन में बड़ी सहायता मिली थी। श्रीमती मृणालिनी देवी ने अपने हाथों से छात्रों के लिये जलपान तैयार करने का उत्तरदायित्व लिया था, किन्तु हायरे दुर्भाग्य। अभी विद्यालय को प्रारम्भ हुए एक वर्ष भी न बीतपाया था कि कवि संसार को भंग करती हुई कवि-पत्नी अनन्त की गोद में सदा के लिये सो गई। रवीन्द्रनाथ ने अपनी पत्नी की रुग्णावस्था में जैसी सेवा-शुश्रूषा की उसकी परिवार को आज तक स्मृति है।

अब कवि के जीवन का बड़ा ही दुःखमय अध्याय प्रारम्भ होता है। पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात ही उनकी दूसरी पुत्री की भी मृत्यु होगई। इसके लगभग एक वर्ष पश्चात् सन् १९०५ में उनके वृद्ध पिता भी चल बसे। नियति का निर्दय प्रहार यहीं तक सीमित नहीं रहा, अल्प समय पश्चात् ही उनके बड़े एवं प्राणप्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई। मृत्यु के निरंतर भीषण प्रहारों से महाकवि की आत्मा करुण-क्रन्दन कर उठी। 'स्मरण', 'नौका डूबी', तथा 'खेवैया' नामक प्रसिद्ध

रचनाएँ इसी अवधि में लिखीं गईं। कवि की इन रचनाओं में बड़े ही मार्मिक उद्गार हैं। इस महान् शोक से संतप्त हृदय को भगवत् प्रेरणा एक दिव्य ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब उन्होंने यह निश्चित रूप से समझ लिया कि मृत्यु अंत नहीं अपितु जीवन की पूर्णता है।

व्यक्तित्व-विकास एवं ख्याति:—

सन् १९१२ ई० में कवि ने पुनः योरोप यात्रा की। इस यात्रा में ईटस और सी. एफ. एण्ड्रूज जैसे मनीषी उनके सम्पर्क में आये और यूरोप को उनकी गीताञ्जलि का परिचय हुआ। स्वदेश वापिस आने पर सन् १९१३ में उनकी गीताञ्जली नोबल पुरस्कार से सम्मानित हुई और उनकी कीर्ति विश्व-व्यापिनी बन गई। इसी वर्ष कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने कवि को डी० लिट् की पदवी प्रदान कर कवि के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शन किया। १९१६ में कवि ने जापान की यात्रा की। उन दिनों जापान पूर्वी देशों के उत्थान का अग्रदूत समझा जाता था। जापान में दिये हुए व्याख्यानों का संग्रह 'नेशनलिज्म' के नाम से प्रकाशित हुआ। उसके उन्होंने बतलाया कि राष्ट्रीयता की भी सीमाएँ हैं और उनका उल्लंघन दोष बन जाता है। वहाँ से वे अमेरिका गये। वहाँ पर दिये हुए व्याख्यानों का संग्रह 'पर्सनेलिटी' नाम से निकला। १९१४ में वे पूर्वी देशों में भ्रमण करते रहे। उन्होंने चीन और ईरान की यात्रा की। ये यात्राएँ विश्व-मैत्री भाव की स्थापना के उद्देश्य से हुई थीं।

इन्ही वर्षों में जबकि सारे विश्व में उनकी कीर्ति कौमुदी खिल चुकी थी, कवि की अन्य महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उन्हें 'नाइट' की उपाधि प्रदान की गई तथा अन्य कई प्रकार से देश में उनका सम्मान हुआ।

उन्होंने अपने आदर्शों को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु 'विश्व भारती'

नामक एक विश्व-संस्कृति की संस्था की स्थापना की और ग्राम सुधार के लिये श्री निकेतन की स्थापना की जोकि ग्रामों के पुनर्निमाण के लिये विश्व भारती का एक विभाग है। नोबल पुरस्कार से तथा पुस्तकों से उन्हें जो भी द्रव्य प्राप्त हुआ वह सब इसी संस्था के लिये व्यय किया गया। शनैः शनैः वह एक विश्व विद्यालय के रूप में परिणत हो गया और उसका नाम यथार्थ में ही विश्व भारती होगया जो कि विश्व भर की संस्कृति का बोधक है। संसार के विभिन्न देशों के विद्यार्थी यहाँ कार्य एवं संस्कृति के बंधुत्व में परस्पर मिल जुलकर रहते हैं। यूरोप और एशिया के कतिपय बड़े बड़े विद्वान भी वहाँ आते हैं और वहाँ रहकर भारतीय कला, संगीत एवं संस्कृति का अध्ययन करते हैं। कवीन्द्र यहाँ एक साधारण अध्यापक और संस्थापक सभापति के रूप में रहते थे। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति ही नहीं, अपना सम्पूर्ण जीवन इसे अर्पण कर दिया।

साहित्य, कला और संस्कृति के लिये जहां कवि ने इतना किया वहाँ समय समय पर स्वदेश प्रेम भी प्रदर्शित किया। बंग भंग के समय उन्होंने बहुत काम किया। जलियांवाला बाग के हत्या काण्ड से तो वह इतने दुखी हुए कि उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया। उनके अंग्रेज मित्र इससे असंतुष्ट होकर अलग हो गये, किन्तु उन्होंने इसकी बिल्कुल चिन्ता नहीं की। वृद्धावस्था में उनका स्वास्थ्य कुछ खराब रहने लगा था किन्तु उनकी आध्यात्मिक शक्ति का ह्रास नहीं हुआ। समय समय पर जब भी आवश्यकता हुई तब उन्होंने बर्बरता, पशुता, जुल्म और हत्याओं के विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की और करारे जवाब दिये।

कवीन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह केवल कवि, उपन्यास-कार, नाटककार एवं कहानी लेखक ही नहीं थे, किन्तु एक बड़े संगीतज्ञ, चित्रकार, तत्वज्ञानी, पत्रकार अध्यापक, वक्ता एवं अभिनय की कला में

प्रवीण थे। अपनी असाधारण प्रतिभा और भावोद्वेग से उन्होंने विश्व मानव की वन्दना की। देश और जाति के संकीर्ण बन्धनों को त्यागकर समस्त मानवता को अपने हृदय में धारण किया। पीड़ित मानव की वेदना को भाषा प्रदान की, उसकी आशा को उन्होंने छन्दों में रूपान्तरित किया और उसके आनन्द को संगीत की सैकड़ों धाराओं में बहाया। मानव-महत्व के इस पुजारी ने देश-विदेशों में भ्रमण करके मानवता को दानवी शक्ति से छुटकारा दिलाने की अमरवाणी सुनाई। मरने के कुछ दिन पूर्व ही उन्होंने मृत्यु के सम्बन्ध में कविता लिखवाई थी। ८१ वर्ष की अवस्था में स्वास्थ्य बिगड़ने लगा किन्तु उनका साहित्यिक कार्य चलता रहा। वे अपनी कविताएँ बोलकर लिखवाते रहे। ८, अगस्त, १९४१ को गुरुपूर्णिमा के दिन अपने जोड़ा संकों के राजभवन में शिष्य प्रशिष्यों के बीच भारत का रवि सदा के लिये अस्त हो गया। उन्हें खोकर विश्व-मानव दरिद्र हो गया।



पतित-पावन—

ईसामसीह

क्रुद्ध लोगों की भीड़ एक अबला को घेरे हुए खड़ी है। सभी के हाथ में पत्थर हैं और वे पत्थर मार-मार कर उस स्त्री की जान ले डालना चाहते हैं। दिखता है कि पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ हुई नहीं कि क्षण भर में ही उसके प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। क्रोध और आवेश में लोग चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं, "यह स्त्री दुराचारिणी है, हम इसे पत्थरों से मारकर रहेंगे, हमें आज्ञा दी जाय।" वहाँ एक व्यक्ति और बैठा है जो प्रशांत, मौन और गंभीर है। वह नीची दृष्टि किये कुछ सोच रहा है। लोगों के बढ़ते हुए आवेश और चिल्लाहट से विचलित होकर उसने ऊपर देखा और कहा—

"ठीक है, यदि यह स्त्री दुराचारिणी है तो इसे अवश्य ही दण्ड दिया जाय। शर्त यह है कि इसके पहला पत्थर वही व्यक्ति मारे जिसने अपने जीवन में कभी कोई पाप न किया हो।" फिर वही नीची दृष्टि और मौन चिन्तन।

भीड़ के लोगों पर मुर्दनी सी छा गई। उनके अन्तर्पट पर विगत जीवन के कलुष-पूर्ण चित्र आने और जाने लगे। उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा और बिना कुछ कहे-सुने ही चुपचाप खिसक गये। मूक पत्थर इधर-उधर बिखरकर उनकी मूर्खता पर हँस रहे थे, जैसे कह

रहे हों, "वाह रे ! मानव समाज, दूसरे के दोषों का ढिंढोरा ढोल पीट-पीट कर किया जाता है और अपने जीवन की ओर कोई देखता ही नहीं कि कितने पापों का घर है।"

अब वहां दो ही व्यक्ति शेष थे। एक तो वही स्त्री और दूसरा वह प्रशांत गंभीर महापुरुष जिसके तर्कपूर्ण हस्तक्षेप से उस स्त्री को नया जीवन और सदाचार से रहने की प्रेरणा मिली थी। यह महापुरुष था इतिहास-प्रसिद्ध ईसा मसीह जिसकी पावन स्मृति में ईसवी सन् आज भी इतिहास के अनेक रहस्यों का उद्घाटन कर रहा है।

जीवन-वृत्त:—

महापुरुषों के जीवन-वृत्त के विषय में एक मत होना बड़ा कठिन होता है। उनके महान कार्यों एवं आदर्शों की ओर तो सभी का ध्यान रहता है। पर उनकी जन्म-तिथि, स्थान और कुल-शील आदि के विषय गौण पड़ जाते हैं। महात्मा ईसा के जन्मादि के विषय में भी इसी प्रकार के मत-भेद विद्यमान हैं। इनके जन्म-काल के विषय में कहा जाता है कि जिस वर्ष इनका जन्म हुआ उसी वर्ष से ईसवी सन की स्थापना की गई है।

ईसा के पिता का नाम यूसुफ था जो जाति के साधारण बढ़ई थे। इनकी माता का नाम मरियम था। ये गलील के नाज़रथ नगर के रहने वाले थे। उस समय वहाँ के शासक का नाम आगस्टस था। उसने आज्ञा निकाली कि राज्य के सभी निवासियों की गणना की जाय और उनके नाम लिखे जांय। यूसुफ अपनी मंगेतर मरियम को साथ लेकर यहूदिया के बैतलहम गाँव पहुंचे। वहीं मरियम के गर्भ से ईसा का जन्म हुआ। देव-दूतों की प्रेरणा से बालक का नाम 'यीशु' रखा गया।

उन दिनों यरूशलम में एक वार्षिक पर्व मनाया जाता था। यीशु

के माता-पिता उस पर्व में सम्मिलित होने के लिये यरूशलम गये। वहाँ बालक अपने माता-पिता से बिछुड़ गया। बहुत कुछ खोज करने के पश्चात् वह मन्दिर में पुजारियों के बीच बैठा उनकी सुनते और उनसे प्रश्न करते हुए पाया गया। बचपन से ही बालक यीशु के हृदय में सत्य के प्रति जिज्ञासा थी और इस जिज्ञासा की शान्ति के बिना उसे चैन नहीं पड़ती थी।

बड़े होने पर यरदन के पादरी जॉन द्वारा यीशु का बप्तिस्मा संस्कार पूरा किया गया। संस्कार की समाप्ति पर जब वह प्रार्थना कर रहे थे तो स्वच्छ आकाश से एक कबूतर उड़ता हुआ आया और उन पर बैठ गया। यह इस बात का प्रतीक था कि उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई है और ईश्वर उनसे प्रसन्न है। अब तो यीशु मानव जाति के लिये मसीहा बन गये। लोग उन्हें ईसामसीह कहने लगे। वह स्वयं भी घूम-घूमकर दूसरों को उपदेश देने लगे।

ईसामसीह के उपदेशों का लोगों के मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। उनकी अमृतोपम वाणी को सुनकर मृतप्राय व्यक्तियों में भी जीवन का संचार होने लगता था। उनके शब्दों में वह प्रेरणा थी कि किंकर्तव्य विमूढ़ व्यक्ति भी-कर्म क्षेत्र में उतर आते थे। उनके सांत्वना भरे सदुपदेशों को सुनकर रोगी मनुष्य भी स्वास्थ्य-लाभ करने लगते थे। उनके विषय में अनेकों आश्चर्य जनक और चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख आता है। ऐसे पहुँचे हुए महात्मा के विषय में जो कुछ भी कहा जाय वह थोड़ा है।

सत्य भाषण और सत्य आचरण ही ईसामसीह का आदर्श था। इस सत्य के पालन में कठिनाइयों का आना स्वाभाविक ही है पर वह कभी कठिनाइयों की चिन्ता नहीं करते थे और भय के कारण सच बात को छिपाना नहीं जानते थे। मन्दिर के पुजारियों को वह बहुधा

कठोर दंड देकर उसके हृदय में
उत्पन्न करने के स्थान पर उसे
अपराधी से नहीं अपराध से
दिया तो फिर पापी होता ही
कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता था कि
उनका पवित्रतम नाम
कहा जाता है।

सहिष्णुता:—

प्रेम के साथ सहिष्णुता
मुख्य अंग था। वह जीवन के
चाहते थे। उनका कहना था
तुम्हें बुरा कहे तुम उसे
लिये प्रार्थना करो और
केवल उपदेश देना ही नहीं
करते थे। अपनी मृत्यु के
और अपने अपराधियों को

महात्मा ईसा की
थी। उनका कहना था कि
करो। यदि इसी पड़ोस को
परिवार, एक समाज में
हो जाय तो यह दुनिया

ईश्वर में विश्वास:—

महात्मा ईसा का
था कि ईश्वर ही

होगया। चारों ओर गहन अंधकार छा गया। रोता और बिलखता समाज उनकी स्मृति को उपदेशक के रूप में मानने लगा।

यह प्राकृतिक नियम है कि जिस वस्तु को हम दबाना चाहते है वह दबने के स्थान पर उभरती है। विरोध और अत्याचार के बल पर सत्य को थोड़ी देर के लिए भले ही छिपा दें किन्तु उसके प्रकाश का नाश नहीं किया जा सकता। महात्मा ईसा की मृत्यु से उनके संदेश का अन्त नहीं हुआ। उनकी शिक्षाएँ लोगों के मन पर जम चुकी थी। दूनी शक्ति से उनका प्रचार हुआ और हम देखते हैं कि उनकी मृत्यु के उपरान्त करोड़ों की संख्या में लोग उनके अनुयायी हुए।

ईसा मसीह की शिक्षाएँ:—

दया और प्रेम

महात्मा ईसा अहिंसा और जीव दया के प्रबल पक्षपाती थे। उनका उपदेश था कि प्राणी चाहे छोटा हो चाहे बड़ा सभी के अन्दर एकसी जीवात्मा रहती है अतः उसे कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए। हमे चाहिए कि हम दूसरों के जीवन का भी उतना ही महत्व समझें जितना अपने जीवन का। एक दूसरे से प्रेम करके ही इस संसार को हम जीने के योग्य स्थान बना सकते हैं अन्यथा यह संसार घृणा और ईर्ष्या का घर बन जायगा। यदि हम चाहते हैं कि दूसरे हमसे प्रेम करें तो हम को भी दूसरों से प्रेम करना चाहिये। जिस व्यवहार की अपेक्षा हम दूसरों से करते हैं वही व्यवहार हमें दूसरों के साथ करना चाहिये।

न्याय व्यवस्था में भी ईसामसीह प्रेम और दया को आधार बनाने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि दंड देने का उद्देश्य सुधार की प्रवृत्ति होना चाहिये न कि कष्ट पहुंचाने की। अतः अपराधी को

उसके हृदय में और अधिक अपराध करने की भावना
स्थान पर उसे सुधरने का अवसर देना चाहिये। वह
। अपराध से घृणा करते थे। पाप का समूल नाश कर
ापी होंगे ही नहीं। उनके पवित्र आचरण का लोगों पर
पड़ता था कि वे उनके भक्त बन जाते थे। इसी कारण
। नाम पतित-पावन (Friend of the sinner)

ाथ सहिष्णुता का उपदेश महात्मा ईसा के जीवन का
वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सहिष्णुता का समावेश
ा कहना था कि अपने शत्रुओं को भी क्षमा करो। जो
तुम उसे भला कहो, जो तुम्हें गाली दें तुम उसके
ो और जो तुम्हें शाप दे तुम उसे आशीर्वाद दो। वह
ा ही नहीं जानते थे, उसके अनुसार आचरण भी
। मृत्यु के समय भी उनके मुख से प्रार्थना निकली थी।
ाधियों को उन्होंने क्षमा कर दिया था।

सा की सहिष्णुता मैत्री और विश्व-प्रेम पर आधारित
ा था कि तुम सच्चे हृदय से अपने पड़ोसी को प्रेम
पड़ोस की भावना का प्रसार एक परिवार से दूसरे
ाज से दूसरे समाज और एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र तक
दुनिया एक पवित्र स्थान बन जाय।

श्वास:—

ा का ईश्वर में अटूट विश्वास था। उनका उपदेश
इस सृष्टि का नियामक है और उसकी इच्छा शक्ति

से ही विश्व का संचालन होता है। यदि हम उसको अपने हृदय में धारण करके काम करेंगे तो पापों से बचे रहेंगे। जहाँ हम उसको भूल जायेंगे वहीं पथ भ्रष्ट हो जायेंगे और भटकते फिरेंगे। उनका उपदेश है—

"परमात्मा में पूर्ण विश्वास रखो। जो माँगोगे, वह अवश्य मिलेगा। कल्पना करो कि प्रार्थना के साथ तुम्हारी मनोकामना पूरी होगई है। बस, तुम्हें किसी चीज की कमी न खटकेगी।"

सदाचार की प्रेरणा:—

महात्मा ईसा के उपदेशों और उनके आचरण से प्रत्येक व्यक्ति को सदाचार की—प्रेरणा मिलती है। उनका महत्वपूर्ण उपदेश था—"हिंसा मत करो, व्यभिचार मत करो, चोरी मत करो, झूठी गवाही मत दो, धोखा मत दो तथा अपने माता-पिता की आज्ञा मानो।" उनका विश्वास था कि यदि हम सत्य भाषण और सत्य आचरण से अपने हृदय को शुद्ध रखेंगे तो वह परमात्मा का निवास स्थान बनेगा अन्यथा परमात्मा हमसे दूर होता जायगा। सदाचार का जीवन दूसरों को प्रेरणा देता है। जीवन में आत्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिये सदाचार का जीवन आवश्यक है।

निर्भीक और स्वतंत्र विचार:—

महात्मा ईसा के स्वतंत्र विचारों की छाप हमें उनके बचपन से ही मिल जाती है। वह पुजारी और पुरोहित वर्ग से स्वयं प्रभावित नहीं हुये वरन् अपने विचारों से उन्हें प्रभावित किया। उनका कहना था कि किसी बात को इसलिये मत मानों कि सब लोग उसका प्रचार करते हैं। अपने अन्तःकरण की कसौटी पर कसकर ही किसी बात को मान्य या अमान्य समझना चाहिये। जो बात तुम्हारे मन को अच्छी

लगे उसका प्रचार करो चाहे उसमें तुम्हें कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े। किसी के डर से हमें सच बात को छिपाना नहीं चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंधकार के उस युग में महात्मा ईसा ने जिस सत्य और ज्ञान के प्रकाश का प्रसार किया उसके आलोक में विश्व की करोड़ों आत्माएँ शान्ति लाभ कर रही हैं।

इस्लाम के प्रवर्तक—

हजरत मुहम्मद साहब

"छिपे हुए, अनमोल रतन हैं, गुदड़ी में ही मिलते।
सुन्दर सौरभ पूर्ण सुमन हैं, काँटों में ही खिलते॥"

× × × ×

एक असहाय बालक जिसका जन्म एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ हो, जिसको उसके माता-पिता अल्पायु में ही संसार में अकेला छोड़ कर चले गये हों, जो आश्रय की खोज में इधर-उधर मारा-मारा फिरे और अपनी उदरपूर्ति के लिये जिसे भेड़-बकरियाँ चराने का काम करना पड़े, वह एक दिन एक विशाल साम्राज्य का संगठक और एक महान् धर्म का प्रवर्तक बनेगा. यह बात उपर्युक्त उक्ति की सार्थकता को ही प्रमाणित करती है। इस बालक का नाम है मुहम्मद, जिस विशाल साम्राज्य का उसने संगठन किया उसका नाम है अरब और जिस महान धर्म का प्रचार उसने किया उसका नाम है इस्लाम।

जन्म और प्रारम्भिक जीवन:—

मुहम्मद साहब का जन्म लगभग ५७० ई० में मक्का में हुआ। इनके पिता का नाम अबदुल्ला और माता का नाम अमीना था। माता-पिता के साम्य पर ही इनकी माता ने इनका नाम 'अल-अमीन'

पर बाद म वह मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुहम्मद
जन्म के कुछ पूर्व ही उनके पिता का देहान्त हो गया था
ी माता का देहान्त उस समय हो गया जबकि उनकी अवस्था
र्ष की थी। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त इनके बाबा ने
लन-पोषण का भार लिया किन्तु दुर्भाग्यवश वह भी शीघ्र ही
से चल बसे। इसके पश्चात् मुहम्मद साहब के चाचा ने
लन-पोषण किया।

ट है कि मुहम्मद साहब का प्रारम्भिक जीवन कठिनाइयों
का जीवन था। आश्रय और आजीविका की खोज मे
थानों में भटकते रहना पड़ा। बारह वर्ष की—उम्र में ही
ाहब ने अपने चाचा के साथ सीरिया की यात्रा की थी।
मद साहब के जीवन में परिवर्तन उस समय आया जब
स्था २६ वर्ष की थी। इसके पूर्व का उनका जीवन कठनाइयों
था। उन्हें अपनी आजीविका चलाने के लिये भेड़-बकरियाँ
पड़ी थीं और रेगिस्तान में शहतूत चुनने पड़े थे। २६ वर्ष
में मुहम्मद साहब का विवाह खदीजा नामक एक धनी
होगया। इस विवाह के उपलक्ष में वह प्रचुर सम्पत्ति के
ुए।

त:—

की ओर से निश्चिन्त हो जाने के कारण मुहम्मद साहब
ध्यात्मिक तृषा शान्त करने के लिये अवसर मिला। उनकी
ति तो सुदृढ़ हो ही गई थी, अब वह अपना अधिकांश समय
ने में लगाने लगे। अपनी इस धुन में अब वह घर के
े लगे। एक समय ऐसा भी आया जब की सत्य की खोज
ंसारिकता का त्याग कर दिया और एक पर्वत की गुफा

में निश्चिन्त रूप से ध्यान-मग्न हो गये। कुछ दिन ध्यानावस्था में व्यतीत हो जाने के पश्चात उनकी सत्य की खोज पूर्ण हुई। खुदा के दूत इजराईल द्वारा उनके पास सत्य का सन्देश पहुँचाया गया। अब वह एक पहुँचे हुए व्यक्ति माने जाने लगे। वह पैगम्बर अर्थात् खुदा के रसूल कहलाने लगे।

पैगम्बर के रूप में:—

मुहम्मद साहब ने जिस ज्ञान की खोज की थी उसके सन्देश को लोगों में बाँटना आवश्यक था। अब वह पैगम्बर के रूप में लोगों के सामने आये और अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने लगे। उन्होंने लोगों को बताया कि खुदा एक ही है और उसी ने इस दुनिया को बनाया है, अतः अनेक देवी-देवताओं के चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। उन्होंने लोगों को पवित्र जीवन व्यतीत करने को प्रेरणा दी और कहा कि खुदा की आज्ञा मानना सब का कर्तव्य है।

धर्म के प्रचार में कठिनाइयाँ:—

अच्छे कामों में रुकावटें आती ही हैं। मुहम्मद साहब को भी धर्म प्रचार के कार्यों में प्रारम्भ में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वह जहाँ भी जाते, लोग उनकी खिल्लियाँ उड़ाते और कई प्रकार से उन्हें तंग करते थे। इन कठिनाइयों और परेशानियों की चिंता न करके मुहम्मद साहब अपने उद्देश्य-पूर्ति में लगे रहे। धीरे-धीरे कुछ लोग उनके अनुयायी बने और उनकी शिक्षाओं को मानने लगे। उनकी पत्नी खदीजा और उनके अन्य साथी जिनमें अली और अबुबकर मुख्य हैं, उनके सिद्धान्तों को मानने लगे। वह जिस धर्म का प्रचार कर रहे थे वह इस्लाम धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हिजरत:—

मुहम्मद साहब के अध्यवसाय तथा कठिन परिश्रम के फल स्वरूप

मक्का की साधारण जनता तो इस्लाम की शिक्षाओं को मानने लगी किन्तु रूढ़िवादी लोग तथा शासक वर्ग ने उनका विरोध प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने मुहम्मद साहब का केवल विरोध ही नहीं किया वरन् कई प्रकार से उन्हें कष्ट देना और तंग करना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में विवश होकर मुहम्मद साहब को मक्का छोड़कर मदीना के लिये प्रस्थान करने को विवश होना पड़ा। उनकी यह यात्रा इस्लाम के इतिहास में हिजरत के नाम से प्रसिद्ध है और इसी के उपलक्ष में हिजरी संवत प्रारम्भ हुआ। ६२२ ई० में मुहम्मद साहब ने यह यात्रा की थी और वह मदीना आकर बस गये।

मदीना में आकर मुहम्मद साहब को अपने कार्य में सफलता मिली। वहाँ के लोगों ने उनका स्वागत किया। बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार किया। लोगों में धार्मिक जोश यहां तक बढ़ा कि उसके प्रचार की एक संगठित योजना बनाई गई। ६२४ ई में मुहम्मद साहब ने धार्मिक अभियान द्वारा मक्का में फिर इस धर्म का प्रचार किया। हजारों व्यक्तियों को इस धर्म में परिवर्तित किया गया। ६३० ई० तक सम्पूर्ण मक्का निवासी इस्लाम के अनुयायी होगये। इसके पश्चात मदीना वापिस आने के तीन महीने पश्चात् ही ८ जून ६३२ ई० को मदीना में ही मुहम्मद साहब की मृत्यु होगई।

मुहम्मद साहब का व्यक्तिगत जीवन:—

मुहम्मद साहब का व्यक्तिगत जीवन बड़ा पवित्र था। वह सादा जीवन और ऊँचे विचारों के पक्षपाती थे। उनकी सादगी उनके रहन-सहन, खान-पान और बात चीत आदि सभी बातों में पाई जाती थी। किंवदन्ती है कि खजूर उनका प्रिय भोजन था, यद्यपि वह कभी-कभी रोटी भी खाते थे। मुहम्मद साहब ने अपने जीवन भर कठिनाइयों का ही सामना किया और वह ईमानदार रहे। उनकी कई शादियाँ हुईं

थीं किन्तु उनकी केवल एक सन्तान—फातिमा नाम की एक लड़की ही जीवित बची।

मुहम्मद साहब की अरब को देन:—

जिस समय मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए उस समय अरब की दशा बड़ी दयनीय थी। राजनैतिक दृष्टि कोण से यह देश अत्यन्त छिन्न-भिन्न था क्योंकि लोग एक संगठित रूप में न रहकर कबीलों के रूप में रहते थे। उनका सामाजिक जीवन भी गिरा हुआ था। समाज में मद्य-पान का बहुत प्रचार था और कई प्रकार की कुरीतियाँ अपनी जड़ें जमाये हुई थीं। समाज में स्त्रियों का दर्जा बहुत ही नीचा था। कहीं-कहीं तो लड़कियों को होते ही दफना दिया जाता था। आर्थिक दृष्टि से भी अरब अत्यन्त निर्धन और साधन हीन देश था। मरुभूमि होने के कारण वहाँ फसलें उत्पन्न नहीं हो सकती थीं और उद्योग धन्धों का सर्वत्र अभाव था। लोगों का धार्मिक दृष्टिकोण भी बड़ा विचित्र था। उस समय तक समाज में मूर्ति पूजा का प्रचलन था और कई देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुहम्मद साहब को अरब एक असंगठित और पिछड़े हुए देश के रूप में मिला। उन्होंने उसे धार्मिक संगठन में इस प्रकार बाँध दिया कि अरब एक संगठित साम्राज्य माना जाने लगा। सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार किया गया और लोगों का ध्यान सच्चे धर्म की ओर खींचा गया। मूर्ति पूजा का प्रचलन बन्द हो गया। यह मुहम्मद साहब की ही देन है कि आज अरब एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य गिना जाता है।

इस्लाम की संक्षिप्त रूप रेखा

मुहम्मद साहब ने जिस धर्म का प्रचार किया उसका नाम है इस्लाम और जिस ग्रन्थ में इस्लाम की रूप रेखा का वर्णन है उसका

नाम है कुरान। कुरान मुसलमानों का अत्यन्त पवित्र तथा धार्मिक ग्रन्थ है। इसमें इस्लाम की जिस रूप रेखा का वर्णन है वह संक्षेप में इस प्रकार है।

इस्लाम के ६ प्रमुख विश्वास (Six Dogmas and believes) हैं जिनको प्रत्येक मुसलमान मानता है। ये विश्वास हैं:—

(१) अल्लाह सर्व शक्तिमान है:—

इस्लाम का उपदेश है कि इस दुनिया में अल्लाह ही सबसे बड़ी शक्ति है। उसी ने इस सृष्टि की रचना की है और वह सर्वव्यापी है। उससे बड़ी शक्ति और कोई नहीं है।

(२) भला-और बुरा:—

इस विश्वास के अनुसार संसार में भले और बुरे दोनों का अस्तित्व है। दोनों के ही फरिश्ते होते हैं। भले फरिश्ते की अल्लाह सहायता करता है और बुरे कामों में फरिश्ते का अगुआ शैतान होता है। शैतान हमेशा बुरे कामों की प्रेरणा देता है इसलिये उससे बचते रहना चाहिये। कभी खाली नहीं बैठना चाहिये और बुरे विचार अपने मन में नहीं आने देना चाहिये।

(३) अल्लाह की बात सर्वमान्य है:—

इस दुनिया को उत्पन्न करने वाला अल्लाह ही है अतः उसकी बात सर्वमान्य है। अल्लाह के ही शब्द उसके पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा कहे गये हैं जिनका संग्रह कुरान में किया गया है। अतः सब लोगों का कर्तव्य है कि कुरान के रूप में अल्लाह की बात को मानें।

(४) मुहम्मद पैगम्बर हैं:—

अल्लाह अपनी इच्छाओं को समय-समय पर पैगम्बरों द्वारा व्यक्त

करता रहता है। मुहम्मद साहब भी उसी के पैगम्बर हुए हैं। अभी तक दुनिया में कुल २८ पैगम्बर हुए हैं और मुहम्मद साहब उनमे अन्तिम हैं।

(५) स्वर्ग और नर्क:–

संसार में जिस प्रकार भले और बुरे का अस्तित्व है उसी प्रकार स्वर्ग और नर्क का। अच्छे काम करने वालों को स्वर्ग मिलता है और बुरे काम करने वालों को नर्क। अतः स्वर्ग प्राप्ति के लिये मनुष्य को हमेशा अच्छे काम ही करना चाहिये।

(६) सब काम अल्लाह के अनुसार:—

भले और बुरे का निर्णायक अल्लाह ही होता है। दुनिया के सब काम अल्लाह की इच्छानुसार ही होते हैं। उसके पास हमारे भले और बुरे कामों का ब्यौरा रहता है। हमें अल्लाह की इच्छा के विरुद्ध कभी नहीं चलना चाहिये।

इन ६ विश्वासों के अतिरिक्त मुसलमान लोग सदाचार के ५ नियमों (**The five pillars of Islam**) को भी मानते हैं जो इस प्रकार हैं:—

(१) शहादह:—

पहला नियम 'शहादह' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका अर्थ होता है "ला-इलाह-इल्लाल्लाह मुहम्मद रसूल उल्लाह।" दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अल्लाह के सिवा और कोई देवता नहीं है और मुहम्मद साहब अल्लाह के रसूल हैं।

(२) नमाज:—

दूसरा नियम नमाज या प्रार्थना कहलाता है। कट्टर मुसलमान दिन में पाँच समय मक्का की ओर घूमकर नमाज पढ़ते हैं। पहली नमाज सूर्योदय के कुछ पूर्व, दूसरी सूर्य चढ़ जाने के पश्चात्, तीसरी दोपहर

में, चौथी सूर्यास्त के समय और पाँचवी रात्रि के आगमन पर। शुक्रवार के दिन मस्जिद में सामूहिक रूप से नमाज पढ़ी जाती है।

(३) दान:—

दान को मुसलमान लोग बहुत महत्व देते हैं। उनका विश्वास है कि पैसा ही पाप की जड़ है अतः इसे इकट्ठा नहीं होने देना चाहिये। सभी महान् आत्माओं की भाँति मुहम्मद साहब ने भी यही उपदेश दिया कि दान द्वारा सत्कर्म कमाते रहना चाहिये।

(४) रोजा:—

साधना के पथ में उपवास का भी विशेष महत्व है। मुसलमानों ने उपवास के लिये वर्ष में एक महीना निश्चित कर रखा है जिसे रमजान का महीना कहते हैं। जिन दिनों मुसलमान रोजे रखते हैं उन दिनों सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ नहीं खाते-पीते। उपवास के नियम बड़े कठिन हैं और कट्टर मुसलमान ही इनका पालन कर सकते हैं।

(५) हज:—

पाँचवा और अन्तिम नियम है हज अर्थात् धार्मिक स्थानों की यात्रा। धार्मिक स्थानों की यात्रा करने से मन पवित्र होता है और जीवन को नवीन प्रेरणा मिलती है। मुसलमानों में मक्का सबसे बड़ा तीर्थ माना जाता है। प्रतिवर्ष हजारों मुसलमान मक्का और मदीना की यात्रा करते हैं।

यह है इस्लाम की संक्षिप्त रूप-रेखा जिसके प्रवर्तक हैं हजरत मोहम्मद साहब। महम्मद साहब ने केवल अरब वालों को ही धार्मिक दृष्टि प्रदान नहीं की वरन् विश्व के सभी मानवों को धार्मिक महत्व और समानता का सन्देश दिया है।
